रघुवीरशरण मित्र

८११.०५
रघु/भू

भारतीय साहित्य प्रकाशन
मेरठ

रघुवीर शरण 'मित्र'

भारतीय साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक

भारतीय साहित्य प्रकाशन

२३२—स्वराज्य पथ

सदर, मेरठ।

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य ५.००

मुद्रक :

निष्काम प्रेस

मेरठ।

'मित्र'

पृथ्वी ने उससे सहने और चुप रहने को कहा था। सूर्य ने उसे तपने का वरदान दिया था। फूलो ने उसे काँटों मे हँसना सिखाया था। वह चली तो राहे बन गई, जली तो दिवाली खिल उठी, बढी तो चोटी छोटी रह गई। उसमें इतने आकर्षण थे कि अवतार भी आकर्षित हो गये। प्रगति के वे चरण विजय की गति से आगे हैं। उसमे इतनी शक्ति थी कि पराजय भी जय मे बदल गई। अग्नि उसे जला न पाई। आँखों के पानी से वह बुझी नही। उसने विष पिया और अमृत दिया। वह सत्य की स्वरलहरी थी, सौन्दर्य की तमोहर ज्योति थी, निष्काम कर्मो की मूर्ति थी। उसने जगल मे मगल कर दिया, बंजर में बसन्त की बहार ला दी। राजा का वैभव उसकी रचना देख हतप्रभ हो गया। बड़े बड़े वीर उसके पराक्रम से पराजित हो गये।

जो अग्निस्नाता है उसे कौन जला सकता है ! जो दूसरो के लिये जिये और दूसरो के लिये मरे वह अमर है। कल्मष धोने वाला गंगाजल क्या किसी मैल से मैला होता है ! चॉद पर धूलि फेकने से चॉद का यश कम नही होता।

एक बार राजा रानी खेत पर सोने का हल चला रहे थे। हल चलाते हुए उन्हें घडे मे एक शिशु मिला। यही शिशु सीता के नाम से प्रसिद्ध है। सीता का अर्थ हल की रेखा भी है। हो सकता है हल से भूमि जोतते हुए ऋषियो के रक्त से प्रकट कन्या धन प्राप्ति के कारण ही राजा जनक ने अपनी मुँहबोली का नाम सीता रखा हो, या यह कहो कि इस प्रकार कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता के दर्शन हुए।

सीता का जन्म और जीवन रहस्य और घटनाओं से भरा हुआ है। कहा जाता है सीता राक्षसों के अत्याचारों से टुकडे टुकडे हुए ऋषियो के रक्त से उत्पन्न हुई थी। वह घडा जिसमे राजा जनक को सीता मिली ऋषियों के शोणित का घडा था। कुछ भी हो, पर यह तो सत्य ही है कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब दिव्य ज्योति सम्भूत किसी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

'त्राहि त्राहि' पुकारते हुए प्राणियो की रक्षार्थ ही शक्ति सीता का उदय हुआ। सीता की कथा करुणा की कथा है, आँसू की उज्ज्वल कहानी है। सीता धरती के लिये वरदान और अपने लिये अभिशाप रही। वह दिवाली की तरह उदित हुई और भोर की तरह बुझ गई। उसका उदय तो उदय था ही, अस्त भी उदय है।

पृथ्वी रत्नगर्भा है। एक से एक अनमोल रत्न धरती से मिलते है। वह क्या है जो धरती पर नही! मिट्टी का मूल्यांकन कौन कर सकता है! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सब भूमि की फुलवारी के ही प्रसाद हैं। सतियों मे सती, गुणियों मे गुणी, वीरो मे वीर यही तो हुए है। हीरे, मोती, मणि-माणिक धरती ही की तो देन हैं। बड़ी बड़ी इमारतें पृथ्वी पर ही तो सुशोभित है। अद्‌भुत दुर्ग, भव्य मन्दिर भूमि ही के तो शृंगार है। चाँद और सूर्य भूमि ही के तो सेवक हैं।

पृथ्वी की महिमा कहाँ तक कहें! यह माँ है, माँ!! जन्म से मृत्यु तक पालन पोषण करती है। तन मन की स्याही को मिट्टी मे घिस घिस कर स्वर्णिम सुगन्ध देती है। कैसे कैसे फूल दिये है धरती ने! कितने कितने दुःख उठाकर पालन करती है माँ! मेदनी सहती है और मौन रहती है। वास्तव मे नेकी की प्रतिमूर्ति है पृथ्वी! कितने रत्न भरे है जमीन मे, किस किस रत्न के गुण गायें!

रत्नगर्भा का एक रत्न सीता के रूप में उदय हुआ। सीता पेड की तरह छाया देती रही और धूप सहती रही। कितने दुःख उठाये सीता ने! पैदा होते ही माँ की गोद न मिली, घडे की कैद मिली। विवाह हुआ तो

बनवास मिला वन में भी दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा। रावण का गारा में रहना पड़ा। सतीत्व की परीक्षा ली गई। रावण की कारा से छूटी तो फिर अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी। लेकिन दुनिया को फिर भी सन्तोष न हुआ। कलंक लगाकर सीता को निकलवा दिया। श्रीराम सिंहासन पर विराजे और सीता वन वन भटकती फिरी। उसका हर श्वास अग्नि-पथ पर दीप-शिखा की तरह स्पन्दित होता रहा।

राम आदर्श राजा ही नहीं, ईश्वर के अवतार थे। पर परिस्थितियों ने उन्हें कितना सताया यह वे ही जानते है। एक ओर तो उनके चरण-स्पर्श से पाषाण बनी हुई अहल्या का उद्धार हो गया और दूसरी ओर वे सीता को झूठे दोषो से मुक्त न कर सके। या यह हो सकता है कि सीता का सत्य साक्षात् दिखाने के लिये ही उन्होंने सीता को वन में भेजा हो अथवा यह भी हो सकता है कि राम के घर की परिस्थितियाँ बड़ी कठोर रही हों, सीता का परिवार में रहना कठिन हो गया हो।

कुछ भी हो और कैसे भी हुआ हो पर यह तो है ही कि उस युग में न तो राम को सुख मिला और न सीता को शान्ति मिली, संघर्ष ही संघर्ष रहे जीवन में। सम्पन्न से सम्पन्न और वीर से वीर भी संघर्षों से न बच सके, ऋषि और महर्षियों को भी विपदाओं ने घेरा। शायद तब सुख और शान्ति का निवास संघर्षों में ही हो।

आश्चर्य तो यह है कि हम अतीत को सुन्दर और वर्तमान को असुन्दर देखते है। शायद वर्तमान अतीत से अधिक असुन्दर नहीं है। चरित्र की दृष्टि से, वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से, सुख दुःख की दृष्टि से, न्याय की दृष्टि से हम आज अतीत से पिछड़े हुए नही। आज हम लड़ने से पहले बात करते है, सोचते हैं, उचित और अनुचित के निर्णय पर पहुँचते है, पर तब तो केवल शक्ति या भक्ति की ही स्वार्थ सिद्धि थी। जिसने राम की भक्ति स्वीकार कर ली उसकी बड़ाई और जिसने राम की शक्ति स्वीकार नहीं की उस पर आक्रमण। तथ्य तो यह है कि राम के सिंहासनारूढ होने के बाद भी धनुष की टंकार नहीं रुकी। राज्य विस्तार के लिये युद्ध करते ही रहे।

ब्रह्माण्ड के स्वामी को विश्वपति बनने की कामना थी या नहीं पर यह तो सत्य ही है कि यदि लव कुश के धनुष से टकराकर राम के धनुष न झुके होते तो श्रीराम विश्व को शक्ति से अपने अधीन कर ही लेते।

सीता के मन मे निश्चित ही बड़ा क्षोभ था, तभी तो उसने लव कुश का निर्माण किया, वनों मे वह आग फूको जिसके सामने गर्व की ज्वाला ठण्डी हो गई।

सीता स्वाभिमान की चिनगारी थी जिससे क्रान्ति के वे शोले उठे कि गर्वीले योद्धाओ का मद चूर हो गया। उसमे इतना आत्माभिमान था कि धरती मे समा गई पर परित्याग करने वाले राज्य के सामने गिड़गिड़ाई नही। अपने तपों से अपने राम के वैभव को चार चाँद लगा दिये पर रामराज्य की शरण नही ली। धन्य है वह सीता जिसने मरने से पहले कलक को उज्ज्वल प्रकाश के रूप मे दिखा दिया। माँ धरती मे समा गई पर उम राज्य की शरण स्वीकार नही की जिसने उसे लज्जित करके निकाला था। कितनी महान् थी माँ कि राम का और अपना दोनों ही का मुख उज्ज्वल करके बीज की तरह मिट्टी म मिल गई। महकते हुए फूलों से पूछो सीता की कहानी। चमकते हुए तारों से झरते है सीता के कर्मो के झरने। बादलो से पूछो सीता कितनी रोई थी। धरती बतायेगी उसकी बेटी पर क्या क्या बीती।

सीता अपराजिता थी। राम के पास सीता की भक्ति की ही शक्ति थी। तनिक सोचिये तो उस नारी के बारे मे जिसके पेट में बालक हों और वह बन मे अकेली हो। धन्य है वह मीता जिसने जीवन और बन की हर कठोरता मे रघुवश की धरोहर सुरक्षित रक्खी। अजेय है वह जो जीवन की हारों में हारी नही। तपांचला है वह जो आग पर चलती रही।

सीता का तन तपा, मन तडपा, पर सुगन्ध हर दिशा में उडी और उड़ती ही रहेगी। सीता ने अपने बनवास जीवन में अवश्य ही कठोर तप किये होंगे। महर्षि वाल्मीकि की छाया में रहकर सीता ने निस्सन्देह नयी नयी रचनाएँ की होंगी। पृथ्वी की पुत्री ने लव कुश को जन्म दिया, रघुवंश

की धरोहर सुरक्षित रक्खी पुत्र का लालन पालन किया शिक्षा दी उन्हें इस योग्य बनाया कि अन्याय के आगे ललकारें। निर्माण, सैनिक शिक्षा, सगठन सभी कुछ माँ ने पुत्रों को दिये। माता सीता ने वन मे आँसुओ को अर्घ्य बनाकर अर्चना के फूल चढाये। पृथ्वी-पुत्री ने अवश्य ही वन में कठोर कर्म किये होंगे, तभी तो लव कुश की विजय हुई।

"भूमिजा" सीता के वनवास जीवन की रचनात्मक कहानी है। घटनाये बीज रूप से उपयोग मे लाया हूँ। वास्तव में मैं सीता के माध्यम से समाज एव राष्ट्र से कुछ कहना चाहता हूँ, सीता की चेतना में आधुनिक गति विधि को उभारना चाहता हूँ, न्याय और निर्माण की आवाज बुलन्द करना चाहता हूँ। सीता जनकदुलारी होने के साथ साथ वर्तमान चेतना की प्रतीक भी है।

आज तप की परिभाषा बदलती जा रही है। वन मे बैठकर तपना चाहे कभी सिद्धि का रास्ता रहा हो, पर आज तो तप का अर्थ है निर्माण। व्यक्ति की सही उपासना समष्टि का हित साधन है। सृजन करना ही तप है। घास फूस को तापने के लिये जलाना धर्म न होकर उससे कुछ बनाना धर्म है। कलाओ का विकास ही हमारा विकास है। वास्तु, मूर्ति, चित्र, काव्य एव संगीत आदि जहा कला है वहाँ कृषि कला, उद्योग आदि भी बडी उपयोगी कलाएँ हैं। आज की होड साम्राज्यवाद की होड़ न होकर निर्माण की होड है। राजाओं से धरती बहुत पिस चुकी है, अब तो वह सृजन के फूलो से खिलना चाहती है, कर्मों की ज्योति से जगमगाना चाहती है। पृथ्वी मे ही प्राण है। धरती की पूजा से ही मनुष्य को सब कुछ मिलता है। कितना सहती है माँ! कितना देती है वह! ईश्वरीय सत्ता और मनुष्य चाहे कितना भी विकास कर ले पर पृथ्वी माता का आसन नही पा सकते। मेदनी मृत्युजया है। मरण की छाती पर माँ का चरण सदा गतिशील है। न जाने धरती मे कितना धन दबा पडा है, पता नहीं पृथ्वी में कितनी सुगन्ध है! मिट्टी मे अमृत है अमृत! सोने मे रूप, रंगो मे आकर्षण, फूलो मे सुगन्ध, इन सब मे मिट्टी ही के तो गुण हैं।

सीता पृथ्वी की पुत्री थी। अत उनमें वे सब गुण कैसे न होते जो पृथ्वी में है। सहिष्णुता, क्षमा, पालन, भक्ति, शक्ति आदि सभी ज्योतियाँ थी सीता में। कौन सा ऐसा दु:ख है जो सीता ने नही सहा। कितनी महान् थी सीता कि कही भी धीरज नही छोड़ा। नारी का सर्वोज्ज्वल चरित्र था सीता में। सीता के वीरत्व के सामने वीरवर रावण की सारी शक्तियाँ हारीं। कोई भी कठोरता उस छुईमुई सी कोमलता पर जय न पा सकी।

सीता भूमि की शाश्वत सुगन्ध के रूप मे जन्म लेकर अमर है। उनकी ज्योति जीवन के लिये प्रकाश है। तीर्थ स्थान है वह स्थल जहाँ सीता के चरण पड़े। मन्दिर है वे झोपड़ियाँ जहाँ सीता ने दीपक जलाकर प्रकाश भरा। सुगन्धित है वे वन जहाँ सीता के श्वासो से सुगन्ध उड़ी। भूमि पर फैले उन श्वासो की कुछ गन्ध "भूमिजा" के अक्षरो में समेटनी चाही है। काँटो मे खिले हुए उस फूल का थोड़ा सा इत्र खींच लाया हूँ। शायद आपको झुलसे हुए जीवन मे कुछ शान्ति मिले, शायद आपको अपना दर्द मीठा लगने लगे, शायद आपको आग पर चलने मे स्वाद आये।

भूमिजा अगर की बत्ती की तरह जलती हुई जिन्दगी की उड़ती हुई सुगन्ध है। गाओ, उस विजयश्री के गीत गाओ जो खाक में मिल डाली पर खिल उठी।

१५ अगस्त १९६१ — रघुवीर शरण 'मित्र'

क्रम

१

अरण्य-रोदन

धरती पर यह कौन ! बिजलियाँ—
जिस पर टूट रही है।
फिर भी काँटों में गुलाब की—
कलियाँ फूट रही है॥

बदली जैसी, पगली जैसी,
हिमगिरि सी गलती है।
आँखों में जल, मन में हलचल,
दीप लिये चलती है॥

यह ठुकराई हुई प्रार्थना—
ठोकर चूम रही है।
मिट्टी में मिल, फूलों में खिल,
बन बन घूम रही है॥

१

अरण्य-रोदन

धरती पर यह कौन ! बिजलियाँ—
जिस पर टूट रही है।
फिर भी काँटों में गुलाब की—
कलियाँ फूट रही हैं।।

बदली जैसी, पगली जैसी,
हिमगिरि सी गलती है।
आँखों में जल, मन में हलचल,
दीप लिये चलती है।।

यह ठुकराई हुई प्रार्थना—
ठोकर चूम रही है।
मिट्टी में मिल, फूलों में खिल,
बन बन घूम रही है।।

खोये शिशु सी खोज रही है—
पूजा परमेश्वर को।
हाय! निराश्रित खोज रही है—
नारी अपने नर को॥

दुःखों का उजियाला लेकर—
पथ रचती जाती है।
सेवा है, नर को सुख देकर—
खुद ठोकर खाती है॥

आँखों में है अर्घ्य, साथ में—
हवा निराश्रित चलती।
दीपित है इस तरह मोम की—
वत्ती जैसे जलती॥

श्वासों में है पवन, पगों को—
आशा ने पकड़ा है।
घोर निराशा में प्राणों को—
पृथ्वी ने जकड़ा है॥

सत्य हुआ साकार या कि शिव—
ने यह चित्र बनाया।
सुन्दरता का फूल बनों के—
रोदन में मुसकाया॥
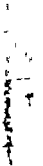
शक्ति हुई लाचार, भक्ति की–
हार, हिमालय रोता।
प्रीति हुई घनसार, गन्ध का–
अन्त यही तो होता॥

ओ अरण्य-रोदन! आँसू कब–
कानों तक जाता है!
अपने सुख में किसी दुखी का–
ध्यान किसे आता है!

फूट पड़ा धरती का कण कण,
सिसक उठे अंगारे।
बरस सुबकियों की भाषा में–
बोले आँसू खारे॥

सिंहासन पर राम, बनों में–
जनक-सुता यह सीता।
राम हुए राजा, सीता का–
दाँव हर गया जीता॥

भौंरा भूल गया फूलों में–
किसको प्यार किया था।
स्वार्थी है संसार, जला कर–
दीपक बुझा दिया था॥

व्यर्थ यहाँ अर्चन फूलों का,
वृथा टूटते तारे।
यहाँ 'अहल्या' पत्थर बनती,
यहाँ राम है हारे॥

किसको प्यार कौन करता है,
स्वार्थों का नाता है।
रसविहीन हो फूल तड़पता,
भौंरा उड़ जाता है॥

महलों की दीवार धरा की—
छाती पर गड़ती है।
चाहे जितनी रौंदो पर यह—
धरती कब लड़ती है!

धरती अमर हुई सह सह कर,
क्या प्रहार से होगा!
राज्य भोगते रहो, दुःख तो—
सीता ही ने भोगा॥

दुःखों में विषधर भी रहते,
मत चन्दन पर भूलो!
राज्य भोगने वालो जागो,
मत प्रभुता में भूलो!

मचल उठी यदि सीता तो फिर–
लंका जल जायेगी।
नयी क्रान्ति से महल महल की–
मिट्टी गल जायेगी॥

मौन क्रान्ति सी सीता बन में–
हिम जैसी गलती है।
स्वतन्त्रता की शुभ घड़ियों में–
बत्ती सी जलती है॥

धिक् धिक् ऐसा राज्य जहाँ–
आँसू को नही सहारा।
तट ने आश्रय दिया नदी को,
प्यासा रहा किनारा॥

ऐसा निर्मल कौन प्यार को–
जिसने नही भुलाया!
ऐसा कोई नहीं विश्व ने–
जिसको नही रुलाया॥

काजल की कोठरी यहाँ पर–
दाग लगा करते है।
नही मरण के बाद चिता पर–
जीवित को धरते हैं॥

सीता का परित्याग हाय ! यह—
भूल हो गई भारी।
रोती है मुसकान, जानकी—
फिरती बन बन मारी ॥

राम ! बताओ जग के शक पर—
क्यो सीता को त्यागा ?
टूटा करते धनुष, टूटता—
नही ब्याह का धागा ॥

डिगी न सत से सीता, ज्वाला—
साक्षी है नारी की।
नभ से ऊँची आज हो गई—
धरती की बारीकी ॥

धनुष तोड़ने वाला कायर—
है अपयश के आगे।
इसीलिए क्या लंका जीती—
थी तूने हतभागे !

क्यों रावण को मारा तूने,
क्यो योद्धा संहारे !
क्यो सीता को मुक्त किया, क्यों—
बाली जैसे मारे !

रावण ने दी जान, जानकी—
नही हृदय से त्यागी।
कितना सुख दे सके राम कह—
ओ सीता हतभागी !

बना रहा था रावण तुमको—
लका की पटरानी।
रामराज्य ने दिया तुझे—
रोने को खारा पानी॥

नहीं चाँद में स्याही रावण—
के मन की परछाई।
लंकापति ने फूल न तोड़ा,
गर्दन नही झुकाई॥

आती है आवाज कही से—
क्या अब वीर न कोई !
जिसके हित में मरा हाय ! वह—
जनक-सुता क्यों रोई !

राजतन्त्र में आज भूमिजा—
पर क्या बीत रही है !
गिरा स्वर्ग का आँसू, उल्टी—
गंगा आज बही है॥

सीता का परित्याग हाय ! यह–
भूल हो गई भारी ।
रोती है मुसकान, जानकी–
फिरती बन बन मारी ।।

राम ! बताओ जग के शक पर–
क्यों सीता को त्यागा ?
टूटा करते धनुष, टूटता–
नही व्याह का धागा ।।

डिगी न सत से सीता, ज्वाला–
साक्षी है नारी की ।
नभ से ऊंची आज हो गई–
धरती की बारीकी ।।

धनुष तोड़ने वाला कायर–
है अपयश के आगे ।
इसीलिए क्या लंका जीती–
थी तूने हतभागे !

क्यों रावण को मारा तूने,
क्यों योद्धा संहारे !
क्यों सीता को मुक्त किया, क्यों–
बाली जैसे मारे !

रावण ने दी जान, जानकी—
नहीं हृदय से त्यागी।
कितना सुख दे सके राम कह—
ओ सीता हतभागी !

बना रहा था रावण तुमको—
लंका की पटरानी।
रामराज्य ने दिया तुझे—
रोने को खारा पानी॥

नहीं चाँद में स्याही रावण—
के मन की परछाई।
लंकापति ने फूल न तोड़ा,
गर्दन नहीं झुकाई॥

आती है आवाज कहीं से—
क्या अब वीर न कोई !
जिसके हित मैं मरा हाय ! वह—
जनक-सुता क्यों रोई !

राजतन्त्र में आज भूमिजा—
पर क्या बीत रही है !
गिरा स्वर्ग का आँसू, उल्टी—
गंगा आज बही है॥

माली तो मर गया, फूल अब–
चाहे कोई तोड़े।
दीपक आग बना जिस घर में–
वह घर में क्या छोड़े !

रावण तो मर गया, भूमिजा–
पर कर लो मनमानी।
शिव का आराधक रोता था,
तड़प रहा था पानी ।।

धनुष तोड़ कर तुम्हें स्वयंवर–
में से ला सकता था।
फोड़ राम का हृदय राम के–
यश पर छा सकता था ।।

किन्तु धनुष शिव का था, गुरु का–
गौरव कैसे ढाता !
शिव का आराधक उपास्य की–
कैसे बान गिराता !

जितना प्यार दशानन को था,
नहीं राम को होगा।
तेरे द्वार भिखारी बनकर–
आया, हर दुख भोगा ।।

तेरे लिए कुटुम्ब मिटा कर—
रामचन्द्र से हारा
सीता से था प्यार राज्य कब
था रावण को प्यारा !

ब्याही गई राम से फिर भी—
सर्वत्र आलोकित था।
सीता हुई पराई, मेरा—
सीता ही में चित्त था।।

कहो किसे तन मन की—
सुन्दरता से प्यार न होता !
जग में ऐसा कौन प्यार को—
हार नहीं जो रोता !

किन्तु प्यार के लिए सत्य को—
मैंने नहीं जलाया।
मर मर गया मगर वैदेही !
तुझे न हाथ लगाया।।

भूमि खोद कर मिट्टी पर मैं—
तुझे उठा लाया था।
गमले में मानो गुलाब का—
पौधा ले आया था।।

हारा हूँ इसलिए सभी
अपराध आज मेरे हैं।
जनक-सुता ! कुछ बोल ब्याह के--
कहाँ आज फेरे है ?

मेरे दोष नहीं हैं देवी !
दोष राम के भारी।
बाली मारा किन्तु विभीषण--
की मति उसने मारी ॥

गद्दारी के फलस्वरूप ही--
हार हुई रावण की।
घर का भेदी लंका ढाये,
जय है ऐसे रण की ॥

रावण है बदनाम, राज्य--
लेने रघुपति आये थे।
साधु वेश में दल बल लेकर--
लंका पर छाये थे ॥

एक तीर में प्राण राम के--
रावण ले सकता था।
जीते हैं जो उन्हें हार भी--
रावण दे सकता था ॥

पर सीता के मानस मे थे
राम, हाय : वह हारा।
सीता से था प्यार, मारता–
कैसे उसका प्यारा!

ले सीता की ढाल सामने–
मेरे राघव आये।
सीता आगे आई जब भी–
मैंने तीर चलाये॥

सीते! तुम मेरे उर मे थी,
फिर भी राम न चूके।
मेरे पुतले अब तक फूँकते,
मैंने राम न फूँके॥

सत्य कहो सीता! मैंने कब–
तुमको दु:ख दिया था?
काट बहिन की नाक राम ने–
हमला स्वयम् किया था॥

जय के लिए यज्ञ करने–
वाले को वर दे आया।
अपनी मौत, राम की जय,
रावण शंकर से लाया॥

अगर कैद कर शूर्पणखा का–
राम सामने आते।
मेरे हाथों से 'शूर्पण' का–
शीश कटा वे पाते॥

कोई भाई भगिनी का–
अपमान नहीं सह सकता।
नाक काटने वाले का सिर–
काट नहीं रह सकता॥

मेरा अमर चरित्र राम की–
जय माँगी शंकर से।
मेरा अमर चरित्र गई–
सीता उज्ज्वल इस घर से॥

तुम्हें आग पर रख रावण की–
ले ली गई परीक्षा।
पर तुम मुझसे अधिक दे रही–
हो अब नई परीक्षा॥

यदि मैं धरती पर होता तो–
नूतन प्रश्न उठाता।
राम! तुम्हारे न्यायालय में–
तुमको पकड़ बुलाता॥

इसीलिए क्या तुम सीता को–
लका से लाये थे !
ओ अवतार ! राज्य करने को–
ही क्या तुम आये थे !

समझी थी केकयी, मन्थरा–
का अपराध नही था।
राजतिलक होने वाला था,
लेकिन भरत कहाँ था ॥

राजनीति की चाल अनुज को–
नाना के घर भेजा।
भोली थी केकयी, सेविका–
का चिर गया कलेजा ॥

उसका आज प्रमाण त्याग दी–
सीता, राज्य न छोड़ा।
उत्तर दो क्यो राज्य न छोड़ा,
सीता से मुँह मोड़ा !

राज्य प्रेम के पथ मे बाधक–
पहली बार हुआ है।
आज नही, त्रेता मे ऐसा–
हाहाकार हुआ है ॥

परवानो की मृत्यु हा गई,
हमने बाग सजाया।
जिसने तोडा प्यार हाथ से–
उसने हस उड़ाया॥

यह भी तनिक न सोचा सीता–
माँ बनने वाली है।
जो बगिया में आग लगा ले,
वह कैसा माली है!

जीते हो तुम इसीलिए तो–
जग पूजा करता है।
रावण हारा नही क्योकि अब–
तक भी जग डरता है॥

कागज के पुतले को जिन्दो–
से जलवाया जाता।
भेदी ने खो दिया, नही–
रावण कब मरने पाता!

रामचन्द्र के गुण गा गा–
रामायण रचने वालो!
खुली अदालत में रावण से–
आकर आँख मिला लो!

त्याग राम का नहीं भरत का
त्याग हुआ है भारी ।
लक्ष्मण त्यागी थे जिसने–
उर्मिला राम पर वारी ॥

सीता का है त्याग, वंश के–
लिए प्राण दुख सहते ।
फूट रहा है हृदय, नयन मे–
अश्रु नही पर बहते ॥

सूर्य वंश के प्राण नयन में–
स्वप्न भरे गाते है ।
इसीलिए आँखों तक आकर–
प्राण लौट जाते है ॥

आशा भी कितनी सुन्दर है,
जीने को कहती है !
प्राण हार जाते है पर–
उम्मीद बनी रहती है ॥

बार बार झंझावातों में–
सीता झोके खाती ।
प्राण डूबने को उत्सुक,
आशा नौका बन जाती ॥

उठते हैं तूफान जब कि–
अपने ठुकराया करते।
दीपक को क्या गम, परवाने–
जल मर जाया करते।

सीता ने सोचा मिट्टी में–
मिलूँ फूल बन जाऊँ।
आँसू हूँ, धारा बन जाऊँ,
नये रंग भर लाऊँ॥

कल कल करती गंगा बहती,
शीतल जल की धारा।
गंगा माँ की गोदी ले लूँ,
तज दूँ जग की कारा॥

वहाँ रहूँ क्यों जहाँ न्याय पर–
चलती हों तलवारें।
नाव डुबा दूँ, आज हाथ में–
लूँ जननी पतवारें॥

ओ मेरी आँखों के आँसू!
जल से बन जा ज्वाला।
सीता की आँखों के आगे–
नाच उठा नभ काला॥

भावुकता ने जब सीता के—
नोच दिये पर सारे।
तब उसकी आँखों से निकले—
जल भीगे अंगारे॥

देह काँपने लगी, आँधियाँ—
मानो देह धरे हो।
शून्य सिसकने लगा कि जैसे—
सूखे घाव हरे हों॥

चली डूबने सीता, गंगा—
गरजी, धरती दहली।
भूमि-सुता के सजल नयन में—
कम्पन आई पहली॥

मानो उस क्षण जल की धारा—
ने बाँहें फैलाई।
मानो नाव डुबाने को—
लहरें उठ उठ कर आई॥

राजाओं का अन्त आज—
होगा बोली जलधारा।
नहीं रहेगी, नहीं रहेगी—
राजाओं की कारा॥

वैभव की रोशनी आँधियों–
से बुझने वाली है।
अन्धकार बढ रहा, कहो यह–
कैसी उजियाली है!

आँसू चुग चुग नदी बह चली,
नाव चली पर्वत पर।
बेटी का दुख देख धरा की–
छाती काँपी थर थर॥

काँप उठा ब्रह्मांड सती ने–
जब मरने की ठानी।
आया एक उबाल डूबने–
को जब हुई भवानी॥

ऋषि ने आकर कहा, दया–
करदो! हे क्षमा, दया हो!
दे दो ऐसे गीत कि जिनमें–
जीवन जड़ा नया हो!

वाल्मीकि की कातर वाणी–
प्रलय रोकने आई।
जलने को थी सृष्टि, एक ऋषि–
ने आ आग बुझाई॥

कौन ? एक भिक्षुक, सीता के-
आगे झोली लाया।
जियो और जीने देने का-
दान माँगने आया॥

बहुत सहा है, यह भी सह लो,
सहने ही में सुख है।
अपना सुख देकर तुम ले लो-
जग मे जितना दुख है॥

राजमहल उस ओर, यहाँ तुम-
नूतन पेड़ लगाओ!
स्वर्ग आरती लेकर आये,
ऐसा विश्व सजाओ!

देवी! माँ बनने वाली हो,
जग को जन्म नया दो!
जो पीड़ा से जले जा रहे-
देवी! उन्हें दया दो!

बरसो बदली बनकर बरसो,
प्यासी रहे न धरती।
जन जन की आशा माता से-
रह रह विनती करती॥

अपनी हारो पर मत रोओ,
जय भी मिल जायेगी।
मिट्टी में मिल मिल जीवन की—
कलिका खिल जायेगी॥

मत सोचो कोई पूछेगा—
गीले नयन तुम्हारे।
तुम्हे देखकर दूर हटेंगे—
आ आ पास किनारे॥

मझधारो से हार मान कर—
डूब न ओ तैराकी!
तेरे साथ साथ चलने को—
जन्म बहुत है बाकी॥

ऐसा कदम पड़े धरती पर,
चिह्न न मिटने पाये।
सीता! ऐसे उठो तुम्हे जो—
भूला वह चल आये॥

चमक उठी बन के रोदन मे—
चपला सी चिनगारी।
दमक उठी सीता के उर में—
स्वप्नो सी किलकारी॥

कर्म भूमि पर करवट लेकर–
रवि की रेखा जागी।
नयी किरण सी चली अर्चना,
राह बनी हतभागी॥

श्वासों में था पवन, देह में–
धरती, चला मरण था।
मानो किसी पंगु का कृत्रिम–
उठता हुआ चरण था॥

चली आँधियों में दीपक ले–
आँचल की छाया कर।
लगी लीपने धरती दुलहन–
आँखों में आँसू भर॥

२

अन्तर्द्वन्द्व

हिमालय फूट कर रोना,
गगन की जिन्दगी गलती।
सुबह में दीप सी रिस रिस—
विजय की हर्षिना जलती॥

बसन्ती रूप पतझड़ की—
तरह क्यों शब्द करता है!
न जाने क्यो गगनवासी—
तड़प कर दीप धरता है!

चाँद से आग झरती है,
चाँदनी का बिछौना है।
निराश्रित गोद के धन सा—
चाँद नभ में खिलौना है॥

पास मे शेर चीते साँप
बिच्छू आरती करते।
पगों में जुगनुओ के दीप–
तम के दूत ला धरते॥

शलभ को दीप पर जल कर–
बहुत सन्तोष होता है।
न सूरज आग से जलता,
न मिट कर बीज रोता है॥

कलंकित रात मे लिपटी,
छिपाये दीप चलती हूँ।
राम के यज्ञ में आहुति–
बनी हूँ, खूब जलती हूँ॥

मुझे सुख है मगर हे ऋषि!
धरोहर राम की तन में।
सुरक्षित रख सकूँगी या–
नहीं इस आग से बन में॥

भविष्यत् देह में लेकर–
बनी अभिशाप बैठी हूँ।
पुण्य की सृष्टि में मानो–
अभागिन पाप बैठी हूँ॥

सुना ऋषि ने करुण क्रन्दन,
धरा का मौन टूटा था।
नही पहले उसी दिन बस–
उसी दिन छन्द फूटा था॥

कहा, बेटी! न रोओ तुम,
सभी आँसू मुझे दे दो!
प्रलय को रोक लो देवी!
न सागर का हृदय भेदो!!

आँख से गिर रहे आँसू,
गगन से गिर रहे तारे।
न जीना चाहते हैं अब,
अभागे दुःख के मारे॥

तुम्हारे दुःख मे आकाश–
धरती छोड़ भागा है।
तुम्हारे दुःख मे चन्दा–
युगो की रात जागा है॥

तुम्हारी पीर से ही नीर–
हिमगिरि से बरसता है।
तुम्हारे दुःख छूने को–
राम का मुख तरसता है॥

तुम्हारी वेदना से भूमि—
चुप होकर गई मर सी।
तुम्हारी आँख छूने को—
नदी की बाढ़ तक तरसी॥

तनिक देखो तुम्हारे दुख—
से सब पेड रोते है।
पहाडो के फटे अन्तर—
भूमि भर को भिगोते है॥

मगर तुम हाय! धरती पर—
धरा सी मौन लेटी हो।
सत्य की दीपिका हो तुम,
भूमि की दिव्य बेटी हो॥

दिशाओं मे स्वय के शोक—
का क्रन्दन मुखर कर दो!
मृतक की आँख में आँसू—
सती! दो बोल से भर दो!

तुम्हे जिसने रुलाया है—
उसे दो बूंद आँसू दो!
तुम्हे जिसने भुलाया है—
उसे दो बूंद आँसू दो!!

धरा पर एक स्वर गूंजा
न दुख सुखधाम से कहना!
न मेरे दु.ख की गाथा—
कभी तुम राम से कहना!!

सभी के नाथ जो है मैं-
अभागिन सेविका उनकी।
वनो मे आ बसी हूँ मैं-
सुहागिन सेविका उनकी॥

बहुत रोयी मगर आँसू—
न मेरी आँख से निकला।
कभी भी नर्म आँसू से—
न दुनिया का हृदय पिघला॥

सुनाना व्यर्थ, दुःखों की—
कहानी कौन सुनता है!
व्यथा से मौन अम्बर—
आँसुओ के मेघ बुनता है॥

किसी के दुख का इतिहास—
पूरा ही नही होता।
किसी के त्याग का अभ्यास—
पूरा ही नही होता॥

तपा कर अग्नि मे मेरी
परीक्षा राम ने ले ली।
सजा लंकेश रावण की–
बहुत निर्दोष ने झेली॥

न जाने भाग्य मे क्या क्या–
लिखा है मुझ सुहागिन के।
न आँसू भी रहे अब शेष–
आँखो मे अभागिन के॥

बहुत रोई, जन्म से आज–
तक रोती रही हूँ मैं।
फूल की सेज पर काँटे–
बिछे, सोती रही हूँ मैं॥

हिमालय सी गली हूँ और–
बदली सी झरी हूँ मैं।
तपी हूँ सूर्य सी प्रतिपल,
निराश्रित सी मरी हूँ मैं॥

किसी के भाग्य के नक्षत्र–
सी नभ से गिरी हूँ मै।
न छेड़ो वेदना के फूल,
काँटो से घिरी हूँ मैं॥

न जाने दुःख कितने और-
जीवन में उठाने है !
न जाने शून्य में मोती-
मुझे कितने लुटाने है !

धधकती आग में जलती-
हुई यह जिन्दगी देखो !
सुबह की ज्योति में ढलती-
हुई यह जिन्दगी देखो !

गगन मुझ पर नही गिरता,
नही क्यो भूमि फट जाती।
न जाने मौत भी क्यो दूर-
मुझसे हाय! हट जाती ॥

किया अपराध क्या मैंने,
तनिक बनवासियो बोलो !
किसी निर्दोष के आँसू,
सिन्धु के नीर से तोलो !

अमर आराध्य ! बोलो तुम-
मुझे क्यो भूल बैठे हो ?
भँवर में डूबती मैं, तुम-
कहाँ किस कूल बैठे हो ?

तुम्हारा धन निपट बन में–
पड़ा, रावण न आ जाये।
तुम्हारे धाम मे रावण–
न फिर भू पर चला आये।।

मुझे डर लग रहा है नाथ!
आ जाओ, चले आओ!
तुम्हारी भक्ति रोती है,
प्रकट भगवान हो जाओ!

दान के सूर्य! शोकाकुल–
निशा को ज्योति दे जाओ!
तड़पती मीन सी दो आँख–
अपने साथ ले जाओ!

अभागिन हूँ, तुम्हारे योग्य–
तो मैं हो नहीं पाई।
नयन के नीर से प्रभु के–
चरण मैं धो नही पाई।।

मगर मैं श्वास के दीपक–
जलाये मौन हूँ स्वामी!
तुम्हारी राह में आँखें–
बिछाये मौन हूँ स्वामी!

बिना अपराध के क्यों नाथ !
दासी को बिसारा है ?
अनोखा सिन्धु है यह जग,
न कोई भी किनारा है ॥

सुना है 'राम' कह कर जो—
मरा वह मुक्त होता है।
निकलती आग क्यों हिम से,
पुण्य क्यों आज रोता है !

बड़ा उपकार है ऋषि का,
निराश्रित को दिया आश्रय।
नहीं है दुःख दुखों का,
तुम्हारी बात का है भय ॥

मुझे जीना पड़ेगा रात—
की चादर हटाने को।
मुझे गाना पड़ेगा न्याय—
का सूरज जगाने को ॥

प्रतीक्षा कर रही पूजा,
व्यथा के दीप जलते हैं।
न फिर रोना, चले आओ,
अभी तो श्वास चलते हैं॥

हवा भूकम्प सी चलती,
कही दीपक न बुझ जाये।
तुम्हारा धन धरोहर है,
उदर में फूल मुरझाये॥

ब्याह के बाद बन में, कैद–
में जीवन बिताया है।
अनेको बार मैंने हार–
कर तुमको जिनाया है॥

मगर परित्याग से कुछ सोच–
कर यह जीत रोती है।
जन्म में मृत्यु होती है,
सुबह में रात होती है॥

भूमि को नाम्नो [illegible] मैं
कलकित मर नही सकती
कलकिन मर तुम्हारा मुख—
स्याह् मैं कर नहीं सकती ॥

न उस दिन तक छिपेगा चाँद,
जब तक कालिमा बाकी।
हटा ली नाथ ने छाया,
भूमि तो गोद है माँ की ॥

अगर पति त्याग दे तो गोद—
माँ की ही शरण देती।
जिसे मिट्टी समझते हो—
वही पथ को चरण देती ॥

न यह समझो अकेली हूँ,
धरा तो साथ है मेरे।
लगाया दाग जग ने, दाग—
धोना हाथ है मेरे ॥

अभी तो पाप धोने के—
लिए गगा गरजती है।
अभी तो प्यास पीने के—
लिए बदली बरसती है ॥

जलेगी दीपिका लेकिन–
उजाला श्वास उगलेंगे।
किसी की याद में आँसू–
चुगे है और चुग लेंगे॥

किसी की आँख का हर दोष–
धोकर ही मरूँगी मैं।
देह पर चाँदनी की शुभ्र–
कफनी ही धरूँगी मैं॥

न मुझको पाप का भय है,
न पुण्यों की दया मुझ पर।
सदा सूरज जगाता है–
सुबह को दीप बुझ बुझ कर॥

मुझे अबला न समझो,
क्रोध पीकर शान्त रहती हूँ।
अहिंसा हूँ, स्वयं सह कर–
किसी से कुछ न कहती हूँ॥

मुझे अभ्यास सहने का,
सताना व्यर्थ होता है।
निरर्थक ज़िन्दगी का भी–
यहाँ कुछ अर्थ होता है॥

किसी को आरती के दीप
मे भी आग होती है।
धरा के मौन मे भी एक—
दिन आवाज होती है॥

न यह समझो मरा जो—
मर गया, वह जी नही सकता।
न यह समझो गरल पीकर—
अमृत शिव पी नही सकता॥

शहीदो की कहानी—
ज़िन्दगी बन कर मचलती है।
किसी की मृत्यु नूतन देह—
में करवट बदलती है॥

खिले फूलो! न यह भूलो—
मिटे थे बीज बन कर तुम।
उठो ब्रह्मा! रचो नूतन,
विष्णु हो तुम, और हर तुम॥

धरा सहती बहुत, तुम भी—
सहो सीता, बढो आगे!
अँधेरे में उजाला हो,
बनों मे रोशनी जागे॥

बहुत प्यासे तड़पते है
उन्हे दो बूँद पानी दो !
न राजा की, धरा को हाथ–
पैरों की कहानी दो !

धरो धीरज, बनो माँ,
गोद में आँसू शरण पाये।
बनो में बस्तियाँ जागे,
पगों से फूल खिल जाये ।।

नये युग में स्वयं की वेदना–
के दीप जलने दो !
पहाडो पर अमर शिशु को–
बना कर मार्ग चलने दो !

हृदय हर क्षण सुनहरी–
लहरियों में तैरता रहता।
निराशा में लिये आशा,
मोह की धार पर बहता ।।

न जाने द्वन्द्व कैसा चल रहा,
संघर्ष है हर क्षण।
किसी की हिचकियों से हिल–
तड़पता काँपता कण कण ।।

शलभ से सूय बन कर भोर
सी सीता उठी जल कर
सृष्टि को स्वय में भर कर–
चली सघर्ष के पथ पर ॥

नयी आशा सुनहरी स्वप्न–
लेकर सामने आई।
राम के कण्ठ की माला–
अखिल ब्रह्माण्ड पर छाई ॥

प्रलय के बाद मानो भूमि–
पर फिर से सृजन आया।
धरा का सत्य शिव के प्राण–
यम से छीन कर लाया ॥

३

हाथ बढ़े फूल खिले

रोदन जब हँस पड़ा धरा पर—
फूट पड़ी हरियाली।
माली आकर फूल ले गया,
रही देखती डाली॥

जग के तरु पर डाली जैसी,
सीता बनी प्रतीक्षा।
फूल तोड़ने वाले फूल—
खिला देती थी दीक्षा॥

टूटे हैं यदि आज फूल तो—
कल फिर फूल खिलेंगे।
बिछुड़ गये जो तरु से वे कल—
आकर पुनः मिलेंगे॥

चमक उठा उत्साह धरा पर
जैसे घन में चपला
दमक उठी भावना कर्म की
सृष्टि हो गई सजला ॥

एक नयी कामना कमर कस–
धरती पर हुंकारी ।
गरल भस्म करने को कोई–
गारुडी फुंकारी ॥

असफलता ! मत रोक मुझे तू,
हट जा दूर निराशा !
तुझमें इतनी आग नहीं है,
मुझमें जितनी आशा ॥

प्यास मर गई जिस दिन उस दिन–
पानी प्यासा होगा ।
उसका मरना व्यर्थ धरा पर,
दुःख न जिसने भोगा ॥

मिट कर बीज मुकुट बनता है,
माथे चढ़ता चन्दन ।
पिस कर रंग खिला मेंहदी का,
घुट घुट खिलता अंजन ॥

दुख और सुख मूल कर्म को
पगडण्डी पर आओ !
मत जलते ही रहो जलन से,
दीपक नये जलाओ !

गिला किसी से क्यों करते हो,
देह न अपनी होती।
श्रम के दामों से खरीद लो,
आँखों के सब मोती॥

श्रम से सृजन करो वह जिस पर–
राम स्वयं बिक जाये।
देने वाला खाली हाथों–
स्वयं माँगने आये॥

जिसको है विश्वास स्वयं पर–
जय कब उससे जीती !
आगे कदम धरा सीता ने,
बात भुला दी बीती॥

कदम कदम पर अंगारे है,
फूल फूल में छल है।
यहाँ सहारा किसका, अपने–
हाथ पैर सम्बल है॥

श्वासों के दीपक जलते हैं
राही बढ़ता जाता।
घबराने का नाम मृत्यु है,
राही! क्यों घबराता?

अपना आँसू आप पोंछ कर–
कुछ हँस लो कुछ गा लो!
सुख तो तब है जब दुःखों में–
अपना नीड़ बना लो॥

तब तब राह न पाई जब तक–
पग पग पर पथ पूछा।
जब आगे बढ़ चले राह ने–
हम से हर पथ पूछा॥

आशा हार गई सीता की,
पर विश्वास न हारा।
जीत जीत कर हारी सीता,
पर अभ्यास न हारा॥

कोई मिट्टी में मिलता है,
राज्य किसी ने भोगा।
नयी किरण ने कहा, सुनो–
जंगल में मंगल होगा॥

अमर चेतना सृजन दीप ले,
अन्धकार में जागी।
भाग्य बदलने को सूरज सी–
अग्नि चली हतभागी॥

बोली वालमीकि से, तुमने–
रामायण लिख डाली।
मैं धरती पर आज लिखूँगी–
हर घर की हरियाली॥

उधर महल मे इधर बनों मे–
पेडों पर फल होंगे।
उधर नृत्य की रुनझुन होगी,
खेतों में हल होंगे॥

छोटा बड़ा न होगा कोई,
सब समतल पर होंगे।
खुद बोयेगे, खुद काटेंगे,
सभी भूमिधर होंगे॥

हटा विषमता जनता बन कर,
सीता ने ललकारा।
बन का मौन मुखर करने को–
कम्पित स्वर झनकारा॥

पूजा की आवाज, देवता !
कान खोल कर जागो।
राजाओं से नहीं, धरा की–
गोदी से धन माँगो ॥

ऐसा दान न लो जिससे झुक–
जाये कमर तुम्हारी।
तोड़ो वह दीवार जहाँ–
बन्दी तकदीर हमारी ॥

रच दो ऐसा राज्य जहाँ–
विद्वत्ता चरण न चूमे।
गा दो ऐसा गान ध्यान के–
आगे धरती घूमे ॥

माना बहुत शक्ति है तुम में,
भक्ति हमारी छोटी।
सोने से खरीद सकते हो–
तुम भूखे की रोटी ॥

किन्तु दिवस वह दूर नहीं जब–
सोना रोता होगा।
पूँजीपति किसान बन कर जब–
दाने बोता होगा ॥

जब दानों के मोल बिकेगी–
सोने की दीवारें।
जब धरती के पैर छुवेगी–
महलों की मीनारें॥

जब सुमेरु का शीश झुकेगा–
सरस्वती के आगे।
बीस उँगलियाँ बढ़ीं, पगों में–
फूल खिले, फल जागे॥

खेत-खेत में खिली उजाली,
रेती में रस आया।
वन में नयी बहार आ गई,
सीता का यश छाया॥

धरती की पूजा करने को–
धान तैरने आये।
डाल डाल की हरियाली में–
हीरे मोती छाये॥

कहीं चने की चमक कहीं पर–
थी मक्का दमकीली।
कहीं बसन्ती साड़ी पहने–
फैली सरसों पीली॥

कहीं गेहूं की बालें झूली–
हरी हरी झूलों पर।
चाव भरी मुसकान छा गई–
मानव की भूलों पर॥

फागुन लाया रंग, चैत ने–
पेड़ों को चमकाया।
लो देखो बैशाख आ गया,
खरबूजे भर लाया॥

तपता हुआ किसान जेठ में–
जिसने नीर बहाया।
आमों ने रस दिया जगत को,
कोयल ने कुछ गाया।

धरती में धन दबा पड़ा है,
चाहे जितना खोदो।
युग युग तक प्राणी पायेंगे,
तुम दो दाने बो दो॥

सीता बोती थी धरती पर–
जीवन के कुछ दाने।
फूल खिल रहे थे धरती पर,
ऋषि गाते थे गाने॥

एक डाल पर उसी समय दो-
मुखरित अंकुर फूटे।
इतने मोती खिले खेत में,
खूब सभी ने लूटे॥

रंक बन गये राजा उस दिन,
भिक्षुक रहा न कोई।
ऐसा अमृत वहा सीता का,
सारी धरा भिगोई॥

फूट पड़ा शिशुओं का रोदन,
मुखर हो गया कण कण।
नानी ने धन खूब लुटाया,
लव-कुश आये जिस क्षण॥

बन में एक अमर उत्सव था,
गंगा गाती आई।
पुत्र-जन्म की अमर खुशी में-
माता जोड़े लाई॥

वे ही जोड़े पहन रहे है,
अब तक दुनिया वाले।
रेशम और रुई के कपड़े-
नित नित नये बनाले॥

ऊन कात सीता माता ने–
कपड़े बना लिये थे।
रुई और रेशम के सुन्दर–
कुर्ते कई सिये थे ॥

विना दुहे गउओ ने उस दिन–
इतना दूध दिया था।
त्रेता से द्वापर तक पीकर–
बाँटा बहुत पिया था ॥

लव कुश दो शिशुओं से माँ की–
आँखों में सुख आया।
माँ की गोदी में लवकुश ने–
खिल खिल अमृत बहाया ॥

एक सुनहरी किरण तमोहर–
शिशुओं में झनकारी।
गूँज उठी बन के नीरव में–
लवकुश की किलकारी।

भूली सी कुछ लगी खोजने–
बन मे जनक-दुलारी।
सहसा ऊसर में उग आई–
आशा की फुलवारी ॥

लगो सोचने सीता मेरे–
लव कुश दुख हरेंगे
जीवन भर के अन्धकार में–
दीपक नया धरेंगे ॥

गत आशा के बीज सुगन्धित–
फूलों से फूटेंगे।
मरु की प्यास बुझाने को–
दो झरनो से छूटेंगे ॥

लव कुश का था जन्म, जिन्दगी–
जंगल में आई थी।
जल में, थल में, नभ-मण्डल में–
नयी खुशी छाई थी ॥

एक नया उल्लास भरा था–
गंगा के गीतों में।
सीता ऐसे हँसी कि जैसे–
हारा हो जीतों में ॥

एक आँख हँसती थी उसकी,
एक आँख रोती थी।
विष पीती कपूर सी जलती,
दो मोती बोती थी ॥

दुनिया की हर खुशी किसी गम–
को लेकर आती है।
मेंहदी जितनी पिसी रंग–
उतना ही दे जाती है॥

सीता माँ बन गई, आ गई–
माँ पर जिम्मेवारी।
मानो सीता के रोने में–
आई थी लाचारी॥

जन्मोत्सव पर वन के पक्षी–
गीत सुनाने आये।
बनवासी फूलों के गुच्छे–
सजा सजा कर लाये॥

बन का वातावरण मुखर था,
धरा मोह ने घेरी।
लव कहता था, माँ मेरी है,
कुश कहता था, मेरी॥

माँ कहती, मैं उसकी माँ जो–
माँ का मान बढाये।
जो रोते के नयन पोंछ कर–
जग का सुख बन जाये॥

जो कलक धो दे चन्दा का–
वह है मेरा बेटा।
लव उछला, बोला ले मैंने–
चन्दा अभी समेटा॥

माँ! मेरा मुँह धो, फिर मैं–
चन्दा का मुँह धो आऊँ।
कुश बोला, मैं गगा लेकर–
चन्दा धोने जाऊँ॥

लव चन्दा धोने को उछला,
कुश ने गंगा खींची।
बच्चों का बल घुमडा उमड़ा,
माँ ने गोदी भीची॥

पर न समाये माँ की गोदी–
में वे माँ के तारे।
मानो तीनो लोकों में थे–
बच्चे प्यारे प्यारे॥

तभी कहा सीता ने, लव कुश!
आओ सुनो कहानी।
एक बड़े राजा की जंगल–
में रोती थी रानी॥

सुन कर लव कुश सीता मा की–
गोदी में जा बैठे।
मानो सिंह कुमार जीत कर–
अलग अलग हो ऐंठे॥

एक तरफ गोदी में लव था,
माँ ने कुश को चूमा।
प्रेमपूर्ण हो गया विजन वह,
पत्ता पत्ता झूमा॥

माँ बोली, लो सुनो कहानी,
छोड़ो मेरी चोटी।
राजा बहुत बड़े राजा थे,
रानी थी अति छोटी॥

एक बार राजा के सम्मुख–
दानव दल हुंकारे।
एक तीर से उस राजा ने–
लाखों योद्धा मारे॥

बिना बात नाराज हो गये–
वे अपनी रानी से।
आगे फिर क्या हुआ सुनो सब–
यह अपनी नानी से॥

नानी कहाँ ? कौन है अपनी ?
माँ ! यह हमें बताओ ।
धरती नानी. बाकी बातें–
तुम उससे सुन आओ !

माँ ! नानी तो नही बोलती,
बोलो नानी, बोलो !
राजा ने क्या किया बताओ,
जल्दी से मुँह खोलो !

धरती मौन रही, बच्चों ने–
एक तमाशा देखा ।
किसी नीड़ से दूर खिंची थी–
एक रक्त की रेखा ।।

चोटी पर तोता था, मैना–
धरती पर मरती थी ।
तोता आम काट खाता था,
मैना तप करती थी ।।

मुक्त डाल की क्या तुलना है–
सोने के जालों से !
पाने वालो ! तुम पाते हो–
कुछ खोने वालों से ।।

मैं मँझधार पड़ी नौका हूँ,
लेकिन प्यास बहुत है।
बहुत दूर आकाश किन्तु–
आँखों के पास बहुत है।

पी लूँगी मँझधार, नाव को–
तट तक ले जाऊँगी।
ये आँखों के दीप चढा कर–
प्राण बुझा लाऊँगी॥

४

पुष्पांजलि

नये फूल पर सोना बरसा,
फैली स्वर्णिम रेखा।
मानो मुरझाये उत्पल ने–
सूरज का मुँह देखा॥

गीत छोड़कर गायक निकला–
लेकर फाल कुदाली।
श्रम के दीप लिये चलती थी–
तपती हुई उजाली॥

निर्वासिता गीत गाती थी,
खिली बसन्ती धरती।
मिट्टी से सुगन्ध उड़ उड़ कर–
जग में मस्ती भरती॥

हरि की हरियाली हंस हंस कर–
हरती थी जग-पीड़ा।
खेतों में बाली बन आई–
किस किसान की क्रीडा !

लवकुश की ही तरह भूमिजा–
ने पौधों को पाला।
गन्ध लुटाने लगा धरा पर–
सीता का उजियाला॥

नयी योजना लेकर फैली–
धरती की उजियाली।
सीता थी या झुकी हुई थी–
लद फूलों से डाली॥

छप्पर की छाया में पीड़ा–
करवट लेकर जागी।
भाग्य बदलने को हाथों से–
जाग उठी हतभागी॥

बन के सरकंडो से तट पर–
कुटिया बनी निराली।
सीता ने गृह उद्योगों की–
फैलाई उजियाली॥

हर कुटीर मे घास फूस के–
बनने लगे खिलौने।
खेल खेलने लगे खिलौने–
ले लेकर मृग छौने॥

बना बाँस की तीर कमाने–
लवकुश लगे चलाने।
तीर चलाना लगे सीखने–
बालक इसी बहाने॥

माँ अपने प्यारे बच्चों मे–
कभी कहानी कहती।
कभी राम की कथा श्रवण कर–
शोक सिन्धु में बहती॥

कभी लगाती मन पौधों से,
दीपक कभी दिखाती।
कभी पढाती थी बच्चों को,
बुनना कभी सिखाती॥

सिखलाती थी सृष्टि सजाना–
अपनी कुरबानी से॥
सिखलाती थी ज्योति खींचना–
नदियों के पानी से॥

अपने श्रम सीकर बो बोकर–
जग मे धन भर देना।
खेतों के धन से दानी का–
सिर नीचा कर देना॥

हर घर की गुल्लक भर जाये–
उद्यम के हाथों से।
हर कगन में मोती जड़ दे–
बूंद बरस माथों से॥

दाता कोई नहीं, सिर्फ–
धरती दाता होती है।
भर भर कर मोती लेती वह–
जो दाने बोती है॥

तलवारों से नही श्रमिक के–
हाथों से जय पाओ।
बन कर बीज धँसो धरती में,
कल्पवृक्ष बन जाओ!

जन्म कर्म के लिये मिला है,
कर्म तुम्हें सुख देगा।
जिसके जितने हाथ बढेंगे,
वह उतना ही लेगा॥

जो मिट्टी छू दी सीता ने—
वही बन गई सोना।
कर्मयोग मे लगी भूलने—
सीता मन का रोना॥

जिस पत्ती पर उँगली रख दी—
वही कलात्मक कृति थी।
सीता थी या बीहड बन में—
कोई शुभ ससृति थी॥

ग्राम बालिकाओं ने आकर—
उसका हाथ बटाया।
सबने मिलकर उद्योगों में—
अपना हाथ लगाया॥

कोई ऊन कातने बैठी,
सूत किसी ने काता।
नये खिलौनों से बच्चो का—
लगो जोड़ने नाता॥

मिट्टी और मोम के बबुवे—
बनने लगे वहाँ पर।
गुडियें बनने लगीं सलोनी—
काम बट गया घर घर॥

बने कहीं पर बर्तन जिन पर–
फूल सुनहरी चमके।
बने कहीं पर बटुवे बढ़िया–
जिन पर मोती दमके॥

भोजपत्र की बनी कापियाँ,
कलम बनी छड़ियों की।
सन के बने गलीचे, झालर–
बनी पुष्प लड़ियों की॥

जटा जूट के बने पाँवड़े–
फूलों की बाड़ी से।
बच्चे फूल पत्तियाँ लाये–
बाँसों की गाड़ी से।

कुटी कुटी में निर्माणी थी,
हाथ हाथ में धन्धा।
गन्ध उड़ाती थी कर्मों की–
बन बन सीता गन्धा॥

अलग अलग सामान बना कर–
एक जगह सब लाते।
पहिये जोड़ कीलियाँ जड़ जड़–
गाड़ी बना चलाते॥

पटने लगी खाइया श्रम से,
सड़को पर पग आये।
जंगल में मंगल मुसकाया,
ऋतुओं का रस लाये ॥

जितनी पड़ी जरूरत बादल–
उतना पानी लाते।
आँधी कभी न आती भीषण,
ओले कभी न आते ॥

लव कुश करने लगे कल्पना–
माँ ! हम देश बनाये।
उडने वाले यान बनाये,
चन्द्रलोक में जाये ॥

मेरे मुँह की बात कही है,
माँ लव कुश से बोली।
नये यान में ही ले जाना–
अपनी माँ की डोली ॥

लव कुश की बातें सुन सुन कर–
माँ का मन भर आया।
प्रेम उमड़ आया सीता का,
ध्यान राम का छाया ॥

देख भरी आँखें जननी की–
लव कुश माँ से लिपटे।
मानो टूटी हुई डाल से–
फूल डाल के चिपटे॥

ऐसे खिला हृदय सीता का–
जैसे दीपक जलता।
मानो मेघों के हुजूम में–
चमक चमक रवि ढलता॥

मीठी मीठी गन्ध भूमि की–
हर्ष शोक में भूली।
बच्चों के रोने हँसने में–
माँ अपना मन भूली॥

किसकी जीत न रोई जग में,
किसकी हार न जीती!
किसकी प्यास छकी सागर से,
किसकी गगरी रीती!

आत्मा का विस्तार अमर है,
गति के पैर न रुकते।
लाख आँधियाँ चलें, प्यास के–
दीपक कभी न बुझते॥

बीहड़ बन में हल की रेखा–
बनी भाग्य की रेखा।
एक फूल को उस सारी–
धरती पर खिलते देखा॥

नारी का उत्थान चुनौती–
देता था अम्बर को।
कर्म ज्योति बाँटी सीता ने–
गाँव गाँव के घर को॥

श्वासो का उद्देश्य कर्म है,
थक कर क्यों मर जायें!
मरने से पहले वह कर लें,
याद सभी को आये॥

चाहे भूले नाम, काम तो–
कभी न भूला जाता।
कोई हुआ किसान, आज तक–
याद सभी को आता॥

पहली बार किसी ने दाने–
सुख के बोये होंगे।
पहली बार मकान बना कर–
कोई सोये होंगे॥

नाम न उनके याद किन्तु अब-
पेड़ों की छाया है।
राम! तुम्हारी माया पर-
कर्मों की भी माया है॥

बनी शहद की मक्खी सीता,
फूलों से मधु लाई।
घास फूस को घोट रेशमी-
साड़ी नयी बनाई॥

राजा ने देखी महलों से-
वह अद्‌भुत उजियाली।
फीकी लगने लगी स्वयम् की-
आभा सोने वाली॥

राम सोचने लगे कौन यह-
चित्रकार चल आया!
किसका जादू खिला बनों में,
किसने स्वर्ग सजाया!

बागो से सुगन्ध आती है,
डाल डाल पर फल है।
ये किसके हैं दीप, हमारे-
हीरों से उज्ज्वल हैं॥

इनमें कैसा रस है मेरा
मन मचला जाता है।
रोक रहा हूँ लेकिन तन से—
मन निकला जाता है॥

कैसे सुन्दर बने खिलौने,
कैसे सुन्दर घर हैं!
कितने सुन्दर खेत हँस रहे,
कैसे सुन्दर स्वर हैं॥

पर मैं राजा हूँ, इन पर—
अधिकार न क्यों है मेरा!
इच्छा बढ़ने लगी राम की,
नये मोह ने घेरा॥

उमड़ा क्रोध, भुजायें फड़की,
दौड़ा हाथ धनुष पर।
मानो शान्ति क्रान्ति बन दहकी,
भभकी रूप बदल कर॥

एक दूसरे को न सह सका,
ईर्ष्या दहक रही है।
कण्ठ-हार में डाल डाल की—
पीड़ा महक रही है॥

सब का धन मेरा हो जाये
मन की झोली खाली।
खिले फूल तोड़ा करता है—
क्रूर बहुत है माली॥

फूल खिले, दर्शक ने सोचा—
तोड़ूँ, घर ले आऊँ।
गर्दन काट काट फूलों की,
अपना महल सजाऊँ॥

फूल डाल पर हँसते रहते,
मन्दिर में मुरझाते।
तूफानों को दु:ख न होता,
लघु दीपक बुझ जाते॥

उठे राम के उर से बादल,
वन में आ आ बरसे।
राम-धनुष का स्वागत करने—
गीत उठे हर घर से॥

आँसू अर्घ्य बने सीता के,
दीप बने अंगारे।
मैं तो दीप लिये बैठी हूँ,
आ आँखों के तारे!

५

महल का दीप

मैं हूँ तपता सूर्य गगन में,
जलता दीप महल का।
काँटों के सिंहासन पर हूँ—
प्रहरी चहल पहल का ॥

अपने दुःख सभी कहते हैं,
मैं सुख मे रहता हूँ।
मैं आँसू बन कर कब बहता,
गंगा बन बहता हूँ ॥

यह सिंहासन जिसने मुझको—
बन बन में भटकाया।
यह सिंहासन जिसने मुझसे—
रावण को मरवाया ॥

यह सिंहासन जिसने मुझको—
छुड़ा दिया सीता से।
यह जनता है, जिसने मुझको—
अलग किया सीता से ॥

मुझमें सबके दुःख समाये,
मुझसा सुखी न कोई।
मैंने कैसी फूक मार दी,
मधुमय वीणा रोई ॥

सिंहासन की ओर न आना,
यह काँटों की शैया।
क्या अब सीता नहीं मिलेगी,
बोलो लक्ष्मण भैया !

राजतिलक होने से पहले—
खाक बनों में छानी।
बिछड़े पिता, भरत रोये थे,
बेमौसम था पानी ॥

तुमने कितने दुःख उठाये,
मेरे लिये बनों में।
सिंहासन शत्रुता बढाता,
आते भेद मनों में ॥

सिंहासन की बात चली तो–
कली डाल से टूटी।
सिंहासन पर पग रखते ही–
सीता मुझ से छूटी॥

क्या ही अच्छा होता लक्ष्मण!
यदि तुम राजा होते।
राजा के घर जन्म न लेते,
तो सीता क्यों खोते॥

मुक्त डाल पर सोने वाले–
पक्षी बहुत सुखी हैं।
राजमहल में जलने वाले–
दीपक बहुत दुखी हैं॥

तोड़ो नियम, मिटा दो बन्धन,
सिंहासन को छोड़ो!
छोड़ो बन्धन के सुख छोड़ो,
तोड़ो बन्धन तोड़ो!

सीता का परित्याग! हाय यह–
मैंने क्या कर डाला!
कहाँ ब्याह के फेरे भैया,
छोड़ा कहाँ उजाला?

देह त्याग कर पवन बनूंगा,
सीता मिल जायेगी।
जब बादल बन कर बरसूंगा,
कलिका खिल जायेगी॥

सिंहासन की नींव गड़ी है–
दुखियों की छाती पर।
राजा होकर अपराधी हूँ,
हँसना फूल पिरो कर॥

तीर भोंक दो उस जबान में–
जिसने सीता छोड़ी।
जोड़ी थी जो गाँठ ब्याह में,
सिंहासन पर तोड़ी॥

आज विजय रोती है मेरी,
मुकुट आग का गोला।
रोओ सब मिल इतने रोओ,
बुझे धरा का शोला॥

लक्ष्मण! राज्य सँभालो अब तुम,
मुझसे राज्य न होगा।
राजा हूँ पर आँसू भी हूँ,
मैंने राज्य न भोगा॥

जनता के हित सीता त्यागी,
उसे त्याग सकता था।
जनता की सीता जनता से—
नहीं माँग सकता था॥

राज्य प्रजा का, वह जब चाहे—
सिंहासन को ले ले।
राजा वह है जो जनता की—
नाव भँवर में खे ले॥

सीता क्या सोचेगी मन में,
क्या इतिहास कहेगा!
नर स्वार्थी है, नारी पीड़ित,
यह विश्वास रहेगा॥

मैं कितना स्वार्थी हूँ लक्ष्मण!
मैंने राज्य न छोड़ा।
अपने हाथ न तोड़े मैंने,
फूल डाल से तोड़ा॥

याद मुझे आती है सीता,
सुरभित चाँद कहाँ है?
कहाँ गई बिछवों की रुनझुन,
अनहद नाद कहाँ है॥

कहाँ गई वह निर्झरणी जो—
मन प्लावित करती थी।
कहाँ गई वह हरियाली जो—
मन का तम हरती थी॥

भावुकता में भटक गया मैं,
उसे नहीं पहचाना।
दीपशिखा को ज्वाला समझा,
पूजा को छल जाना॥

क्या सोचा था और हुआ क्या,
जल ने ज्वाला उगली।
फूलो! मुझे न देखो हँसकर,
मेरी बगिया लुटली॥

अपराधी आवाज़ लगाता,
लिख लो दुनिया वालो!
नारी नर से बहुत श्रेष्ठ है,
धरती के गुण गालो!

पाप पुण्य मन के बोझे हैं,
इनसे बचा न कोई।
तब तब प्रलय हुई धरती पर—
जब जब नारी रोई॥

जैसा समय धर्म वैसा ही,
शाश्वत सत्य न बदले।
देह धरे का दोष सभी को,
कोई कैसे बचले॥

सीता पर शक करने वालो !
फूल न दोषी होता।
फूलों का मन नहीं मचलता,
होश भ्रमर ही खोता॥

वृथा धूलि चन्दा पर फेंकी,
सीता गंगाजल है।
अग्नि-परीक्षा देने वाली !
तेरा मन उज्ज्वल है॥

यह कैसा विश्वास मनुज का,
नारी मैली होती।
गुरुता का कुछ मूल्य न होता,
लघुता अगर न रोती॥

यहाँ स्वयम् निर्दोष सभी हैं,
दोष और को देते।
भंगुर रीति रिवाज यहाँ के,
दुखियों के सुख लेते॥

प्यासे अधर पाप करते हैं,
भूखे क्रान्ति मचाते।
दीपक की लौ को क्या चिन्ता,
परवाने जल जाते॥

आँखों का अधिकार देखना,
मन का मोहित होना।
क्या सीता तक पहुँच रहा है—
मेरा चुप चुप रोना?

कर्म अगर शुभ के हित है तो—
कुछ भी पाप नहीं है।
लक्ष्मण! मुझ से राज्य न होगा,
उठता चाप नहीं है॥

राज्य सँभालो भैया! मैं तो—
फिर बन में जाता हूँ।
तीरों के ध्वंसक स्वर तज कर—
वीणा पर गाता हूँ॥

मेरी सीता जहाँ गई है—
वहीं मुझे जाने दो!
बन बन पवन बना डोलूँ मैं,
जोगी बन गाने दो!

राज्य मिला, सीता को खोया,
मैं हारा या जीता।
कहाँ गई प्राणों की बोली,
कहाँ छोड़ दी सीता ?

हाय ! पराये घर की बेटी–
फिरती बन बन मारी।
मैंने पूजा को ठुकराया,
दीप जला, जय हारी ॥

वह गुलाब की सुरभि कहाँ है,
तप की ज्योति कहाँ है ?
कहाँ सत्य की अग्नि-परीक्षा,
खंडित न्याय यहाँ है ॥

मन्दिर की आरती कहाँ है,
कहाँ ज्ञान की कविता।
मन के मेघों में छिप रोता–
बिना धूप का सविता ॥

छोड़ा कहाँ भक्ति को बोलो–
पीड़ित शक्ति कहाँ है ?
कोई मुझे वहीं पहुँचा दो–
सीता गई जहाँ है ॥

राम दुखी ऐसे थे मानो
ब्याह मृत्यु में बदला।
राम इस तरह बिखरे मानो–
बालक का मन मचला॥

देख राम को दुखी पेड़ का–
पत्ता पत्ता टूटा।
देख राम की दशा अनुज का–
धीरज क्षण को छूटा॥

किन्तु सँभल कर बोले लक्ष्मण–
सँभलो, हमें सँभालो!
उड़ती हुई पताका कहती–
मन मत नीचे डालो!

जग में दुःख सभी पर आते,
सूरज तक जलता है।
दीपक अग्नि भरा जीवित है,
हिमगिरि गल चलता है॥

प्रभु ने ही यदि धीरज छोड़ा,
धीरज कौन धरेगा!
धरती ही यदि सह न सके तो–
पालन कौन करेगा!

चारों ओर शत्रु काफी हैं,
बिखरे राज्य पड़े हैं।
दीप जलाने वाले कम हैं,
काँटे बहुत खड़े हैं॥

सीमाओ पर शत्रु छिपे है,
लिये आग के गोले।
छोटे छोटे राज्य बहुत हैं,
धधक रहे है शोले॥

आँसू बन कर ढलो न भैया,
सँभलो, धनुष सँभालो!
सीता तो सारी धरती है,
सबकी लाज बचा लो!

सीता हरने को धरती पर-
रावण ही रावण हैं॥
आज नहीं तो कल कण कण में-
होने वाले रण हैं॥

महानाश से धरा बचा लो,
ऊँची ध्वजा उठाओ!
अखिल भुवन में एक राज्य की-
विश्व ध्वजा फहराओ॥

जिस दिन छूटा धनुष हाथ से—
पराधीनता होगी।
उससे रक्षा कैसे होगी—
जो है दुखी वियोगी ॥

दुःखों में जो रोता है वह—
राज्य करेगा कैसे !
जग में कौन सुखी होगा जब—
दुखी हुए हम जैसे ॥

जग में कौन सुखी है भैया,
पेड़ धूप में तपते।
मौन हो गई, मुखर न होती,
धरती दबते दबते ॥

यहाँ किसे किसकी चिन्ता है,
स्वार्थी दुनिया वाले।
क्षण दो क्षण का फूल अतिथि है,
क्या हँस ले क्या गा ले !

भैया ! आँसू रोको, देखो—
उपवन सूख न जाये।
राजनीति में कविता कैसी,
क्या रवि नीर बहाये !

सिंहासन की शपथ तुम्हे है,
आगे कदम बढ़ाओ !
रघुकुल के गौरव शासन में–
नूतन फूल खिलाओ !

अश्वमेध कर उन्हें मिला लो–
जो दहके बहके है।
शीघ्र बुझा दो वे अंगारे–
जो जग में दहके हैं॥

बुझे न दीप महल का भैया !
पग बढ़ता ही जाये।
स्वतन्त्रता की चहल पहल पर–
आँच न आने पाये॥

भाभी का बलिदान राष्ट्र हित–
दीपक सी जलती है।
भाभी रोती नही धरा पर–
हिमगिरि सी गलती है॥

मन तो वह है जो गल गल कर–
गंगाजल बन जाये।
राजा है हम, बात तभी जब–
दुःख न कोई पाये॥

राजा का कर्त्तव्य दुःख में–
धीरज कभी न छोड़े।
शंख बजा दो आज्ञा दे दो,
सजे खड़े हैं घोड़े॥

गर्वीले राजाओं का मैं–
गर्व चूर कर डालूँ।
छोटे छोटे राज्य मिटाकर,
एक ध्वजा फहरालूँ॥

मरने से पहले कुछ करके,
दीपक बन जल जायें।
जीवन की सन्ध्या में सूरज–
से तप तप ढल जायें॥

तभी सफलता है जब जग में–
रुदन हास बन जाये।
तभी विजय है जब पीड़ित की–
तृप्ति प्यास बन जाये॥

कर्मवीर के लिये पलायन,
मुझसे सहन न होता।
जीने का अधिकार न उसको,
जो दुःखों में रोता॥

दुखो के सूरज म आसू
यह क्या देख रहा हूँ !
आँसू सा जीवन है मेरा,
पर मैं नहीं वहा हूँ ॥

रामचन्द्र ने देखा लक्ष्मण—
मुझसे अधिक दुखी है।
मुझसे अधिक दुखी हैं लेकिन—
मुझसे अधिक सुखी हैं ॥

सबके सुख के लिये सजग हैं,
अपने दुख न कहते।
मैं मर्यादा पुरुषोत्तम पर,
लक्ष्मण कितना सहते !

दुर्बलता को छोड राम ने—
अपना धनुष संभाला।
मानो रात फाड़ सूरज का—
चमका मधुर उजाला ॥

शंख बजा, आरती मुखर थी,
झंडा लहराता था।
यज्ञ-अश्व ले बढ़ा अतुल दल,
ऋषि धुन में गाता था ॥

६

आक्रमण

नमन किसी का मत दुतकारो,
ऊँचे मस्तक वालो !
पैरों के नीचे दीपक है,
जले न पैर बचा लो ।।

कटने वाले शीश न झुकते,
पैनी तलवारों से ।
हँसने वाले अधर न रोते,
जीवन की हारों से ।।

किसमें साहस है जो सह ले—
फूलों के वारों को !
रोक सका है कौन धनुर्धर—
जनता के नारों को !

बढ़ते परों को मत रोको,
खिलते फूल न तोड़ो !
जिस बर्तन में खाते हो तुम—
वह बर्तन मत फोड़ो !

धरती पर अधिकार सभी का,
सभी अतिथि अचला के।
दो दिन के मालिको ! लड़ो मत,
छुओ न व्रण अबला के ।।

धरती पर आकाश न गिरता,
पिला रहा है पानी।
सिर्फ बड़ों की नहीं भूमि यह,
दानी सबकी रानी ।।

मुँह में राम बगल में छुरियाँ,
श्वास श्वास में छल है।
मानव का मन है या कोई—
मीठा मिला गरल है ।।

जीते हुए मनुष्य ! हार का—
पानी समझाता है।
गड्ढे में है पाँव, गगन में—
झंडा फहराता है ।।

उन हारों पर फूल चढ़ाओ,
जो मर मर जीती हैं।
उन जीतों को जीत न समझो,
जो शोणित पीती हैं॥

क्या चिन्ता यदि हार हो गई,
कभी जीत भी होगी।
आज नहीं तो कल गाता है—
पाकर विजय वियोगी॥

अधिकारों की आग धधकती—
धरती की छाती पर।
राजा की बिजलियाँ कड़कतीं—
जन जन की थाती पर॥

रोदन की आवाज न सुनते—
ढोल पीटने वाले।
भाषा में कुछ और हृदय के—
हैं सब विषधर काले॥

धरती से पूछो माँ! तुझ पर—
कितने वार हुए हैं?
तन के मन के युद्ध यहाँ पर—
कितनी बार हुए हैं?

कितना पाप हृदय के भीतर,
कितना पाप प्रकट है।
यह कागज का मंच, मनुज का–
अभिनय, झूठा नट है॥

गोरी सूरत में काली,
तस्वीरे झाँक रही है।
हर छोटे का भाग बड़ों की–
आँखें ताक रही हैं॥

झाँक रही हैं दाये बायें–
छिपी हुई तलवारे।
कभी कभी गुप्तियाँ प्रकट में–
होती हैं पतवारे॥

कदम कदम पर आक्रान्ता हैं,
राजा बनने वाले!
खेत तुम्हारे ही हैं लेकिन–
है राजा के ताले॥

जन जन की थाती पर ताले,
राजतन्त्र यह कैसा!
श्रम की धरती को खरीद–
लेता राजा का पैसा॥

कोई जोते कोई बोये
कोई काटा करता।
जिसकी तेज कटार वही बल–
से धरती को हरता॥

आँसू की आवाज दया की,
भिक्षा तक होती है।
हँसते हुए अधर के आगे,
आँख यहाँ रोती है॥

जिसकी लाठी भैंस उसी की,
यह सिद्धान्त अमर है।
इसका उससे उसका मुझमे,
होता रोज समर है॥

शान्ति कहाँ युद्धों की प्रतिपल,
रह रह आग धधकती।
फूलों पर भौंरे के मन की,
काली कान्ति धधकती॥

किसे पराया वैभव भाता,
किसके नयन न जलते।
किसकी छाती के फूलों पर–
चाकू रोज न चलते॥

जब ताकत का नशा अश्रु में—
ज्वाला भर देता है।
तभी चाँद का अमृत प्यास को—
पागल कर देता है॥

श्रम से सींच सींच सीता ने—
वन में फूल खिलाये।
वन के फूलों को राजा ने—
जलते शूल दिखाये॥

जनता की थाती पर राजा—
के दीपक जलते हैं।
जनता की छाती पर राजा—
के घोड़े चलते हैं॥

एकछत्र राजा बनने को—
रामचन्द्र हुंकारे।
जिनको दूध पिलाया वे ही—
छाती पर फुंकारे॥

पिता पुत्र की ही रचना पर—
ज्वाला लेकर टूटा।
श्रम से फली हुई बगिया पर—
तीर राम का छूटा॥

आज्ञा दी सेना को तत्क्षण—
लाल हो गये उज्ज्वल।
धरती पर झंडा फहराने—
चला राम का दल बल॥

विश्व विजय का झण्डा लेकर—
लाखों योद्धा लपके।
उधर हुआ आक्रमण, इधर—
सीता के आँसू टपके॥

होता है अभियान हृदय पर—
सुख के अभिशापों का।
फूलो से सौरभ उडता है—
दुःखों के तापो का॥

फूल तोड़ने वालो! तुमने—
कितने फूल खिलाये?
क्यों फूलों के पथ में विधि ने—
काँटे हाय बिछाये?

आगे आगे यज्ञ-अश्व था,
चले दिग्विजय करने।
बल के मद में बढ़े अकड़ते,
चले मारने मरने॥

सीता के हसते फूलो पर-
सीता के घन मचले।
पति आये हैं तुझे रिझाने,
ओ सीते! उठ सज ले॥

किया आक्रमण रामचन्द्र ने-
ऋषियों के आश्रम पर।
सीता देख रही थी यह सब-
छाती पर पत्थर धर॥

अस्त्र शस्त्र ले रामचन्द्र की-
सेना चढ कर आई।
सीता के प्यासे आँसू ने-
गिर आवाज लगाई॥

माँ के आँसू ने लव कुश के-
उर में आग लगा दी।
सिह कुमारों की छाती मे-
रण की आग जगा दी॥

लव कुश की आवाज, सभी-
बालक आगे बढ़ आये।
बढ़े इधर से बालक,
लक्ष्मण राम उधर चढ़ आये॥

उधर शस्त्र थे और इधर थे—
बालक सीना ताने।
निर्माणों की रक्षा के हित—
आगे थे परवाने॥

लेकर धनुष राम लक्ष्मण ने—
बच्चों को ललकारा।
कहा, तुम्हारी धरती पर है—
अब अधिकार हमारा॥

मेरे अधिकारों के नीचे—
तुमको रहना होगा।
मैं राजा हूँ, मेरा शासन—
तुमको सहना होगा॥

शासन में रह दास बनो तो—
जीवित रह सकते हो।
सब कहते हैं मुझको राजा—
तुम भी कह सकते हो॥

धधक उठी धरती के ऊपर—
राजतन्त्र की ज्वाला।
मानो बादल घिर घिर आये—
रंग छा गया काला॥

अधिकारो के लिये तन गइ–
रक्त तृषित तलवारे।
आखिर मिट्टी में मिलना है–
जीत मिले या हारें॥

राम स्वयम् ईश्वर होकर भी–
क्यों पद के भूखे हैं?
धरती की बेटी सीता के–
घाव नही सूखे है॥

धनुष बाण ले गर्व अश्व पर–
चढ़े राम हुकारे।
राजतन्त्र के फण धरती के–
फूलो पर फुकारें॥

फूलो पर बिजलियाँ कड़कने–
लगी, आँधियाँ छाई।
बालारुण पर घोर घटाये–
गर्ज गर्ज घिर आई॥

अग्नि बाण बरसाने वाली–
सेना बढी अगाडी।
तीर चलाना सीख रहे थे–
बन में बाल खिलाड़ी॥

कहा बालको से राजा ने
हटो हटो, पथ छोड़ो !
बालक बोले, खेल रहे हम,
घोड़ा वापिस मोड़ो !

नहीं देखते फूल खिले हैं,
माँ पूजा करती हैं।
इधर न आओ, वापिस जाओ,
माँ रण से डरती है॥

ये हैं खेत हमारे, तुम क्यों–
इधर बढ़े आते हो ?
नन्हे नन्हे पौधो पर क्यों–
ज्वाला बरसाते हो ?

झोपड़ियों के दीपो में क्यों–
आग लगाने आये ?
यह मैदान खेल का है, तुम–
आग हाथ में लाये !

दाँत पीस कर धनुष तान कर,
राजा ने ललकारा।
यहाँ गड़ेगा मेरा झण्डा,
सारा विश्व हमारा॥

हँसी आ गई लव कुश को सुन,
कहा, कहाँ रहते हो ?
पथ भूले क्या ! जो मेरे घर–
को अपना कहते हो ॥

कोटि कोटि सेना के आगे–
दो वसन्त झनकारे ।
कहा राम ने, हटो बालको !
ये सब बाग हमारे ॥

लव कुश बोले, यह क्या कहते,
हमने पेड़ लगाये ।
श्रम जल से सींचे है पौधे,
गा गा फूल खिलाये ॥

हमने दीप जलाये हैं ये,
मत इन पर फुकारो !
बालक समझ लड़ो मत हमसे,
मत हम पर हुंकारो !

यह मत समझो हम बच्चे हैं,
हम अणु विभु से भारी ।
जब तक दम है किसमें हिम्मत,
जो ले ले फुलवारी ॥

धनुषधारियो ! अच्छा यह है–
सही सलामत जाओ !
अतिथि अगर हो घर मे आओ,
वर्ना पैर हटाओ !

रामचन्द्र ने कहा क्रोध से,
सब घर मेरे घर है।
लव कुश बोले यदि ऐसा है,
फिर क्यों रण के स्वर हैं ?

सब घर सबके सब है अपने,
फिर कैसी रणभेरी ?
जब मुँह में सूरज की भाषा,
फिर क्यों रात अँधेरी ?

सुन बच्चों की मीठी बातें,
क्रोध बढ़ा लक्ष्मण का।
प्रत्यंचा खींची तन तन कर,
बल उमड़ा कण कण का ॥

किसे पराई बात सुहाती,
सब अपनी सुनते हैं।
पहले बात बढाते पीछे–
रोते सिर धुनते हैं ॥

शिशु ने गाया गीत विरोधी,
क्रोध बढ़ा लक्ष्मण का।
वीर भरत ने तीर तान कर–
शंख बजाया रण का॥

किन्तु राम ने आगे आकर–
लव कुश को समझाया।
कहा, मान लो मुझको राजा,
वर्ना गुस्सा आया॥

रामचन्द्र से आज भुवनपति,
बनने निकल पड़ा हूँ।
धरती अम्बर और रसातल–
से मैं बहुत बड़ा हूँ॥

बोलो, क्या इच्छा है, मरना–
या बन्धन में रहना ?
लव कुश ने सुन कहा–
कह चुके काफी और न कहना॥

हमें दासता नहीं चाहिए,
जीवन की कीमत पर।
जीना नहीं सिखाया माँ ने,
जञ्जीरों में बँध कर॥

मत समझो अपने शस्त्रों से—
हमें काट डालोगे।
मत समझो अपनी सीपी से—
सिन्धु पाट डालोगे॥

इतनी आग नहीं है जितना—
गंगा में पानी है।
उन्हें कौन मारेगा जिनकी—
यह धरती नानी है॥

भला इसी में शस्त्र हटा लो,
हँसो और हँसने दो!
उजड़ी हुई बस्तियों में भी—
दीपक फिर जलने दो॥

पर राजा का अहम्, कहा,
सेना से बढ़ो अगाड़ी!
खेल खेलने में होते है,
बच्चे बड़े खिलाड़ी॥

तुमको है सौगन्ध तीर–
अपने सारे अजमालो।
जितनी भी है आग आज–
सारी हम पर बरसालो ॥

आज चला लो तलवारें–
नन्हे नन्हे फूलों पर।
चाहे जितना हमे चला लो–
तुम तीखे शूलो पर ॥

जब तक तन में श्वास यहाँ पर–
पैर न रखने देंगे।

सारी आग धरा पी जाती,
सारा पानी पीती।
लाखों मौतें हुई किन्तु–
धरती मौतो से जीती ॥

राजा होकर जन जन की–
थाती को हरने वालो!
जाग उठी है जनता अब,
अपना घर बार सँभालो!

हम रोये तुम हँसो, न अब–
ऐसा धरती पर होगा।

ग्रामीणो ने लट्ठ सभाले,
धनुष उठे बाँसों के।
क्षण में लाखो तीर बन गये,
सीता के श्वासों के॥

देख धधकती आग आगये—
वालमीकि जल जैसे।
वर्षो से सूखे बागों में—
आते है फल जैसे॥

बोले, ठहरो राम! धरा को—
श्वास तनिक लेने दो।
नयी पौध को नये नये—
निर्माण तनिक देने दो॥

युद्ध सरल है, किन्तु युद्ध का—
है परिणाम भयंकर।
इतने मत गर्जो जिससे—
शिव जागे, हों प्रलयकर॥

राम और रावण के रण में—
सब कुछ जला पड़ा है।
कहाँ काल अब कैद, कहाँ अब—
नर का गर्व बड़ा है!

जिसकी हार विजय से ऊँची–
वह तलवार कहाँ है ?
तन कटने से हृदय न कटता,
मन की हार कहाँ है ?

बन्द करो यह युद्ध, वनों की–
हरियाली फलने दो !
श्मशानों में चिता नहीं,
घर घर दीपक जलने दो ।।

कोयल के मीठे गानों पर–
कलियाँ नाचें गायें ।
भावों में मानवता जागे,
उजड़े घर बस जायें ।।

गिरा हुआ मन उठे, कालिमा–
अन्तर की उज्ज्वल हो ।
पुण्य फले, जन सुखी यहाँ हों,
प्रश्न मनुज का हल हो ।।

दुखी न हो कोई धरती पर,
ऐसे हाथ बढ़ाओ ।
भाग्य बदल जाये मानव का,
ऐसे पेड़ लगाओ ।।

मत ज्वाला मे घी डालो तुम,
दीपो में घी डालो !
बसी नगरियों को मत फूँको,
उजड़े नगर बसा लो !

तन से नही हृदय से जीतो,
जन जन के अन्तर को।
सूर्यवंशियो ! स्वर्ण लुटाओ,
किरणें दो हर घर को ॥

खेत खेत में खिली उजाली,
सीता ने क्या पाया !
देख दुखी को मन समझाया,
जब भी आँसू आया ॥

राम तुम्हारे ही ये बेटे,
राम तुम्हारी सीता।
खेतो के पीछे रोती है-
राम ! बिचारी सीता ॥

सुन सीता का नाम राम का—
धनुष झुक गया नीचे।
अपनी करनी पर पछता कर,
दाँत राम ने भीचे ॥

लव कुश उर से लगा, राम–
सीता के सम्मुख आये।
सीता सीता मेरी सीता,
कह कह हाथ बढ़ाये ॥

सीता की छाती भर आई,
राम राज्य को भूले !
ऐसे बिछुड़े मिले प्राण को–
जैसे बिजली छूले ॥

कहा राम ने सीते ! आओ,
मेरी भूलें भूलो।
झुलस रहे है प्राण प्यास को,
निर्मल गंगा ! छूलो ॥

ज्योति शिखा ! मेरे प्राणों के,
तम में ज्योति बिछादो !
भूल गया था पथ, सीता !
फिर मुझको राह दिखादो ॥

मैंने उर का फूल नोच कर,
काँटों में ला छोड़ा।
मैंने अपने ही हाथों से–
अपना दीपक तोड़ा ॥

बीती उसे भुलाओ सीता !
अपनी छाया दे दो।
प्राण शून्य में भटक रहे है,
अपनी काया दे दो !

टपक पड़ा सीता का आँसू,
धरा फट गई तत्क्षण।
सीता समा गई धरती में,
प्राण बन गये कण कण।।

७

अश्रुप्रपात

फूल टूट कर गिरे, गगन के—
आँसू टपके भू पर।
धरती ने ले लिया गोद में,
आँसू को तप तप कर॥

रोने लगा चाँद हिचकी भर,
सूरज से जल बरसा।
हाथों में से हंस उड़ गया,
प्यासा तट पर तरसा॥

लव कुश 'माँ माँ!' कह कह दौड़े,
पर माँ कहीं नही थीं।
वहीं कहीं पर धीरे धीरे—
कलियाँ फूट रही थी॥

वालमीकि रो पड़, पुकारा—
बेटी ! घिरी अँधेरी ।
रामचन्द्र ! तुमने आने में—
क्यों की इतनी देरी ?

गंगा छलकी, कहा, कौन अब—
मुझसे बात करेगी !
कहा चाँद ने, मरी चाँदनी,
कैसे रात कटेगी !

तट पर आकर मीन मर गई,
गिरा लक्ष्य से राही ।
रोते रोते कहा राम ने,
कहाँ गई मनचाही ?

वन पुष्पों ने कहा, कौन अब—
हमको पानी देगा !
ग्राम्या बोली, मेरे शिशु को—
कौन गोद में लेगा !

सन्ध्या बोली, मुझे देखकर—
दीपक कौन धरेगा !
ग्वालिन गई, आ रहीं गउएं,
सानी कौन करेगा !

मौन मुखर हो गया व्यथा से,
हवा गीत गाती थी।
सीता की आवाज सुरभि से–
उड़ उड़ कर आती थी॥

जीवन था इसलिये, धरोहर–
जिसकी उसको दे दूँ।
तेरी थी इसलिये, पाप की–
नाव भँवर में खे दूँ॥

सुखी रहो सब, गाओ ऐसे–
पाप पुण्य बन जाये।
ऐसी दो मुसकान सभी को,
आँसू कभी न आये॥

ऋषि रोये, लव कुश रोते थे,
राम हिचकियाँ भरते।
लक्ष्मण बालक जैसे फूटे,
धीरज धरते धरते॥

"सीते! भाभी! माँ! बेटी!"
रोदन फूटा पड़ता था।
सीता का इतिहास मुकुट में–
नये रत्न जड़ता था॥

पहली वार अर्घ्य ढुलकाया—
लक्ष्मण की आँखों ने।
लाखों दीप धरे धरती पर—
कण कण की आँखों ने॥

धनुष उस समय इन्द्र धनुष थे,
नयन बन गये बादल
'सीता सीता!' कहते कहते,
राम हो गये पागल।

रोते थे इस तरह जिस तरह—
कोई विधवा रोती
मैं तब जागा चली गई जब—
सीता बोती बोती।

हाय! लुट गया, हाय! लुट गया,
राजा फूट रहे थे.
मानो सीता के आँसू पर—
झरने छूट रहे थे।

बादल रोये, पर्वत रोये,
सिन्धु बन गया खारी
लक्ष्मण! सीता गई सदा को
मैंने बाजी हारी।

बहुत भली थी मेरी सीता,
सुन्दर थी तन मन से।
सब कलियों में एक कली थी,
सुन्दर थी उपवन से॥

वह चन्दन की गन्ध कहाँ जो–
मन सुरभित करती थी!
वह मनहर मुसकान कहाँ जो–
हरे घाव भरती थी!

टूट गया वह फूल, खिली थी–
जिससे नयी उजाली।
चन्दा तो मर गया, रह गई–
पीड़ित रजनी काली॥

मैंने ही विष दिया घृणा का,
सीता मुझसे छूटी।
मन्दिर में फल फूल चढाकर,
प्यासी डाली टूटी॥

मैंने बहुत दुःख दे डाले,
सुख देने वाली को।
मैंने काली रात कह दिया,
स्वर्णिम उजियाली को॥

एक बार फिर फटो भूमि माँ,
मुझको भी ले जाओ !
देखो मैं रह गया अकेला,
आओ सीता ! आओ !!

बालक जैसे बिलख रहे थे—
वन में धीरज दाता।
मछली जैसे तडप रहे थे—
चुप चुप लक्ष्मण आता ॥

लव कुश तो ऐसे रोते थे—
जैसे वन का रोदन।
लक्ष्मण ऐसे तडप रहे थे—
जैसे मन का रोदन ॥

चुप हो जाओ, क्यो रोते हो,
रोने से क्या होगा !
वालमीकि ने कहा बिलख कर,
सुख न किसी ने भोगा ॥

ऐसा कोई नही तड़प कर—
जो न कभी भी रोया।
किसको काल नही खाता है,
किसने मित्र न खोया !

मरने ही के बाद किसी की–
कीमत निकला करती।
मिट जाती है देह मनुज की,
खूबी कभी न मरती॥

क्यों रोते हनुमान! भरत! क्यों–
आँखे भर भर लाते?
चले गये जो जग से वे फिर–
रोने से क्या आते!

जाने वाला क्यों आये जब–
जीते जी रोता है।
उसकी नींद न तोड़ो कोई,
जो सुख से सोता है॥

अब न कभी सीता रोयेगी,
घृणा न उससे होगी।
कम या अधिक किन्तु दुनिया में–
व्यथा सभी ने भोगी॥

मृत्यु एक परिवर्तन है जो–
दु:ख भुला देता है।
रोने वालो! यहाँ सभी को–
काल सुला देता है॥

सब रोते पर सभी रुलाते,
यह आश्चर्य अनोखा।
सब धोखों से तड़प रहे है,
सब देते हैं धोखा॥

अब पछताना व्यर्थ, नाव–
डूबी गहरे पानी में।
अब किसको दें दान, याचना–
समा गई दानी में॥

सूख गई बरसात प्यास से,
लेकिन फूल खिले हैं।
सीता ने तप किया तभी तो–
लव कुश तुम्हें मिले हैं॥

इनमें ऋषि का सत्य, राम का–
तेज, त्याग लक्ष्मण का।
इनमें सहन शक्ति धरती की,
जीवन है कण कण का॥

इन फूलों के लिये बनों में–
सीता को आना था।
जग को युग निर्माता देकर–
सीता को जाना था॥

राजमहल में रह कर सीता—
लव कुश बना न पाती।
बेटे होते किन्तु तमोहर—
दीपक जला न पाती॥

लव कुश उनमें खेले हैं जो—
खिलते हैं काँटों में।
डाली और फूल दोनों ही—
मिलते हैं काँटों मे॥

झड़े पड़े हैं फूल धरा पर,
डाल गई फल देकर।
मानवता का मधु फैलाओ,
घर जाओ सुत लेकर॥

रामायण के साथ तुम्हें दो—
महाकाव्य देता हूँ।
दुःख मुझे भी होता है पर—
धीरज धर लेता हूँ॥

सीता की आँखों के तारे,
चाँद सूर्य ले जाओ!
इनको पाकर सुखी बनो तुम,
जग में ज्योति बढ़ाओ!

धरती की डाली दुनिया को–
फल देने आई थी।
मेरे आश्रम में कुछ दिन को–
उजियाली छाई थी॥

चली गई वह जिसे देखकर–
रामायण रचता था।
चली गई वह जिसे देखकर–
राम राम भजता था॥

चली गई वह जिसने खँडहर–
में निर्माण किये हैं।
चली गई वह जिसने जल जल–
जग को दीप दिये हैं॥

सीता कोई नहीं, दिशाओं–
की सुन्दर स्वरलहरी।
सीता एक तपस्या थी जो–
ऊँचा ध्वज बन फहरी॥

सीता एक दया थी जिसमें–
सबके दर्द भरे थे।
सीता एक नदी थी जिससे–
सारे पेड़ हरे थे॥

सीता एक प्यास थी जिसमे
नयनो की भाषा थी।
सीता वह इच्छा थी जिसमें–
सबकी अभिलाषा थी॥

सीता राम-कथा है जिसमे–
व्यथा काव्य रचने की।
सीता अमर गीत है जिसमें–
कथा राम भजने की॥

नारी का अभिमान सुबह दे,
बुझा दीप सा जल जल।
नारी का उत्थान प्राण दे,
बना भूमि पर उत्पल॥

चलती चलती राह बन गई,
दीपक जलती जलती।
आँखों से ढल सिन्धु बन गई,
हिम सी गलती गलती॥

लव कुश! ये हैं पिता तुम्हारे,
तुम राजा के बेटे।
क्या सच बाबा! फिर क्यों अब तक–
हम मिट्टी में लेटे?

पिता ! तुम्हारे बिना हमारी
मा निशिदिन रोती थी ।
वन के फूलों की प्रहरी थीं,
कभी नहीं सोती थीं ॥

हा ! कितने हतभागे है हम,
पिता मिले, माँ छूटी ।
पिता ! बताओ, क्या कारण था—
जो माँ तुमसे रूठीं ?

माँ तो बड़ी भली थी, उनसे—
क्या कुछ भूल हुई थी ?
क्या भूले से कभी तुम्हारी—
कोई चीज छुई थी ?

यदि कोई गलती थी तो तुम—
क्षमा उन्हे कर देते ।
बहुत बड़े राजा थे तुम तो,
कही उन्हें रख लेते ॥

निश्चित ताना मारा होगा—
तुमने निज वैभव का ।
या संसार न भाया होगा,
माँ को कृत्रिम रव का ॥

माँ ने तभी वनो मे आ रच–
डाला विश्व अनोखा।
सब समान है सभी सुखी हैं,
यहाँ न कोई धोखा ॥

पिता ! कभी क्या तुम ऐसे ही–
छोड़ न दोगे हमको ?
फूट पड़े सुन राम, चोट पहुँची–
थी गहरे गम को ॥

कुछ न कहा, दोनों बच्चो को–
लगा हृदय से रोये।
तूफानों में गिरे पेड़ से,
मूर्च्छित होकर खोये ॥

लव कुश गिरे पगो में उनके,
कहा, पिता उठ जाओ !
बीती बाते सभी भुला दो,
इतने मत घबराओ !

धनुष हमारे हाथों में है,
हम उपवन के प्रहरी।
पानी बन कर पवन बन गई,
जननी ध्वज बन फहरी ॥

चारों ओर छा गई सीता,
हरियाली छाई थी।
खेती बन कर सीता फैली,
पीड़ा मुसकाई थी॥

राम शून्य में 'सीता सीता!'
कह कह कर रोते थे।
मानो नयन प्रिया के उर में—
सारा धन बोते थे॥

यह धरती है, यहाँ राम भी—
रोये, बन बन भटके।
जीवन में लगते रहते हैं—
हर प्राणी को झटके॥

सीता स्वयम् शक्ति थी, फिर भी—
रोते रोते सोयी।
सबने निधि पाई धरती पर,
सबने पाकर खोयी॥

सीता की मुसकान बिछी थी—
रंग भरे फूलों में।
राम फूल से लगे भूलने,
काँटों के भूलों मे॥

खिला याद का चाँद गगन में
नभ बरसा, गिरि फूटा।
मिला दर्द का गीत मित्र को,
वीणा का स्वर टूटा॥

८

अरुणोदय

आँख खुली, देखा धरती पर–
मुक्त भ्रमर गाते थे।
नयी सुबह थी, नया सूर्य था,
सरसिज मुसकाते थे।।

फूल फूल पर कुटी कुटी पर–
रवि ने स्वर्ण लुटाया।
नये साज पर नये राग ने–
गीत बदल कर गाया।।

धरती की सन्तानो! धरती–
लो, राजा जाता है।
जन जन के मन्दिर में माली–
फूल लिये आता है।।

जनता को दे राज्य, भूमि से–
राजतन्त्र जाता है।
चला राम का राज्य, राज्य–
सीता का अब आता है॥

सीता कृषि है, जो भी चाहो–
वह सब माँ से ले लो।
माथा टेक माँगने वालो!
अब धन हाथों से लो॥

ज्योति-शिखा की तरह दीपको!
पर हित जलते रहना।
सूर्यवंश के दीप! सूर्य से–
भू पर चलते रहना॥

निष्कलंक सीता जैसा ही–
तप हो यहाँ तुम्हारा।
तृप्ति वहाँ तृष्णा को ढूँढे–
पग हो जहाँ तुम्हारा॥

रोगी ढूँढे मिले न कोई,
मृत्यु चैन से सोये।
याचक द्रव्य लुटाते डोलें,
मानव इतना बोये॥

मन का दुःख मिटे हर जन का,
हर मन अपना मन हो।
स्वर्गलोक को भी कुछ दे दे,
जग में इतना धन हो॥

'दैव दैव !' चिल्लाने वाले–
कर्म कर्म चिल्लायें।
ऐसा कर्म फले पूजा के–
गीत मौन हो जाये॥

ऐसा हो ईमान कचहरी–
के पन्ने फट जायें।
ऐसी हो आवाज मन्दिरों–
के घण्टे घट जायें॥

ऐसी फैले ज्योति सूर्य का–
जलना जिससे छूटे।
ऐसा जागे प्रेम फूट का–
भाग्य सदा को फूटे॥

सत्य फले मानव के स्वर में,
बहे प्रेम की गंगा।
रहे न कोई भूखा जग में,
रहे न कोई नंगा॥

यह सीता की ज्योति अन्न की-
थाली सदा भरी हो।
कोयल गाये गीत, पुण्य की-
डाली सदा हरी हो॥

वर्ग मिटे, सत्ता हट जाये,
भेद भाव मिट जाये।
पटे विषमता के सब गड्ढे,
सब मिलजुल कर गाये॥

पुलिस हटे, तलवारें टूटे,
मानव का मन जागे।
ऐसा हो उत्थान मनुज का-
स्वर्ग न कोई माँगे॥

समता का हो राज्य, एक ही-
आत्मा सुख दुख भोगे।
एक सूर्य ही तुम्हे बहुत है,
लाख दीप क्या लोगे!

लाखो हिलमिल एक बनो तुम,
एक लाख हो जाओ!
एक ज्योति की उजियाली ले-
जागो और जगाओ!!

एक ध्वजा के नीचे जग हो
विश्व प्रेम का बल हो।
कोई दुखी न हो धरती पर,
कहीं न कोई छल हो॥

हर ऊसर उर्वर हो जाये,
हर मुट्ठी में धन हो।
हर प्राणी में प्रखर ज्योति हो,
हर लोहे में मन हो॥

शस्त्र मिटे, कोमलता जागे,
फले सत्य का शासन।
एक दूसरे के उर में हो–
हर प्राणी का आसन॥

आँसू यदि छलके तो सबकी–
आँखें भर भर आये।
सबका दुःख एक हो जाये,
अक्षय ज्योति जगाये॥

ज्योति सुतो! माँ की महिमा पर–
सृजन सुमन फैलाओ!
अमर ज्योति की यादगार में–
अमृत धार बरसाओ!

ऐसा हो विज्ञान ज्ञान का–
पैर न हटने पाये।
ऐसी रहे बहार फूल का–
रूप न घटने पाये॥

तुमने पहचाना भी माँ को,
कृषि ने स्वर पाया था।
ले सूरज की ज्योति धरा पर–
चाँद उतर आया था॥

सब फूलों के रंग भरे थे,
सब नदियों के गाने।
सीता की तुलना में लघु हैं–
बलि के सब परवाने॥

कृषि से मिली, समाई कृषि में,
अब तुम कृषि को सींचो।
पानी में बिजली रहती है,
मन्थन करके खींचो॥

स्वर से पूजा बहुत हो चुकी,
श्रम के महल उठाओ!
हर डाकू दाता बन जाये,
इतना अन्न लुटाओ!

लव कुश को दे राज्य राम ने
कहा, कहाँ हो सीता !
तेरे बिना बाग जंगल है,
भरा हुआ घट रीता ॥

मेरे दोष बहुत हैं देवी !
पुण्य यही है मेरा ।
मेरे जैसे विष घट पर भी–
प्यार रहा है तेरा ॥

तुम ऐसे ही खिलीं फूल–
काँटों में जैसे खिलता ।
तुम ऐसे ही मिली मार्ग–
भूले को जैसे मिलता ॥

तुमने इतना दिया मुझे,
भगवान कहा जाता हूँ ।
खोई निधि पाने को कण कण–
में बसने आता हूँ ॥

'सीता सीता !' रटते रटते–
राम रमे कण कण में ।
कृषि बन कर जीवन देती है–
माँ सीता क्षण क्षण में ॥

सीता का साम्राज्य धरा पर
रच दो रचने वालो !
दो जनता की ज्योति जगत को,
शाश्वत शान्ति बसा लो !

क्षणभंगुर जीवन होता है,
फिर क्यो खीचातानी ?
कितने दिन बचपन रहता है,
कितने रोज जवानी !

नया यहाँ बचपन आता है,
आती नयी जवानी।
बूढे पैरो ! नयी पौद को—
दे दो नयी कहानी ॥

बिकता है ईमान देश में—
सुख के अभिशापो से।
फूलो से दुर्गन्ध उड़ रही—
भ्रमरों के पापो से ॥

अपनी अपनी पड़ी सभी को,
सत्य घुटा जाता है।
राम ! तुम्हारी सीता का फिर—
धैर्य छुटा जाता है ॥

खेतो मे अगार उठ रहे
नयी सुबह सोती है।
पड़ी घड़े में बन्द कृषक की–
मुँहबोली रोती है ॥

उन्नति के पन्ने फटते हैं–
कैंची की फलको से।
पतन झर रहा स्वार्थ बढ़ रहा,
विष ढलता अलकों से ॥

चौराहे पर आँसू रोते,
मरी पड़ी है आशा।
सोच रहा हूँ आज बदल दूँ–
उन्नति की परिभाषा ॥

पहरेदार नीद मे भूले,
सीता बन बन रोती।
पत्थर पर गिर टूट रहे है–
स्वतन्त्रता के मोती ॥

व्यक्ति नहीं है बड़ा, व्यक्ति से–
देश बड़ा होता है।
जिससे खिलते कमल देश के–
वह रवि कब खोता है !

बल से तन पर जय पाना क्या
मन पर भी जय पाओ !
छल से सीता को छलना क्या,
मन की ज्योति जगाओ !

बल के बलवे बहुत हो चुके,
छल ने बहुत छला है।
मुँह पर स्याह नकाब डाल कर–
मानव बहुत चला है।।

हारे बहुत जिताया काफी,
दुःख लिये सुख हारे।
हमको फूलों से ज्यादा है–
उनके काँटे प्यारे।।

सीता की अर्चना अमर है,
अमर राम की माया।
गन्ध फूल की तरह सुगन्धित–
है तन मन की छाया।।

सूक्ष्म और विस्तार एक है,
स्वर्ण ज्योति छा जाये।
राम वही है जो सीता को–
खोकर दुःख दबाये।।

सीता कभी न त्यागे कोई
राम न क्षण क्षण रोयें।
कर्मों की इति हो न कभी भी,
पथिक न थक कर सोयें॥

अमृत भरे आनन्द सुमन से,
हर प्राणी मुसकाये।
बढता जाये चरण प्रगति का,
मरण स्वप्न हो जाये॥

कण कण में पीड़ा अंकित है,
क्रीड़ा करने वालो!
जग बालक सा बिलख रहा है,
माँ! जग को बहलालो!

रोने से धरती फटती है,
मत कोई भी रोओ!
हँसते हँसते उठो साथियो,
हँसते हँसते सोओ!

दीपक की लौ हँसी आग पर,
सूर्य आग में रहता।
हिमगिरि की आँखों का आँसू—
गंगा बनकर बहता॥

बीज धूलि में मिला, फूल–
बनकर महका डाली पर।
शलभों ने निर्वाण पा लिया,
चढ कर उजियाली पर।।

बुझ कर दीपक धरा बन गया,
जग चलता पलता है।
सीता का जीवन धरती पर–
धार बना चलता है।।

श्वास निकल कर पवन बन गये,
हवा सुगन्धित बहती।
पीडा तप कर ज्योति बन गई,
पथ में जलती रहती।।

सुन्दर वे जो मिट्टी में मिल–
फूलों में हँसते है।
धरती के बलिदान अमर हैं,
तारों मे बसते है।।

सब रोते पर कुछ के आँसू–
गीत बना करते हैं।
सब मरते पर कुछ शहीद हो–
जीत बना करते हैं।।